संस्कृत शिक्षण-विधि

डॉ० वाचस्पति द्विवेदी
रीडर, शिक्षाशास्त्र विभाग, सं० सं०
विश्वविद्यालय, वाराणसी

सुशील प्रकाशन
चौक, पटना

संस्कृत शिक्षण-विधि

लेखक
डॉ० वाचस्पति द्विवेदी
एम० ए० (संस्कृत, हिन्दी), एम० एड, पी-एच० डो०
साहित्याचार्य
रीडर, शिक्षाशास्त्र विभाग
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय
वाराणसी

प्रकाशक
सुशील प्रकाशन
चौक, पटना सिटी—८००००८
(बिहार)

प्रकाशक
सुशील प्रकाशन
चौक, पटना सिटी–८०००0८
(बिहार)

संस्करण : १९७९

मूल्य : ९-५०

मुद्रक
कल्पना प्रेस
रामकटोरारोड,
वाराणसी

प्राक्कथन

संसार की प्राचीनतम भाषाओं में तीन भाषाओं की गणना की गई है—१. ग्रीक २. लैटिन और ३. संस्कृत। संस्कृत इन सब में प्राचीन है। ऋषियों की तपःपूत वाणी में रचे वेद अपौरुषेय माने गए हैं और वे संस्कृत की ही अमूल्य निधियाँ हैं। अतः संस्कृत भाषा इस देश में देववाणी के रूप में प्रतिष्ठित है। एक समय था जबकि संस्कृत इस देश की मातृभाषा तथा राष्ट्रभाषा-दोनों ही थी। भाषा के रूप में वह आज भी सभी प्रकार के विचारों की अभिव्यक्ति-क्षमता से भरपूर तथा इतनी समृद्ध है कि आज के अनेकानेक नवीनतम् विषयों के लिए भी पारिभाषिक तथा अन्य प्रकार के शब्द दे सकती है।

किसी भी वाङ्मय के दो पक्ष होते हैं—१. भाषा-पक्ष तथा २. भाव अथवा विचार-पक्ष। वाङ्मय के इस द्वितीय पक्ष को ही साहित्य की संज्ञा दी गई है। कहने को आवश्यकता नहीं कि इन दोनों ही दृष्टियों से संस्कृत विश्व की प्राचीनतम् भाषाओं में अपना सर्वोच्च स्थान रखती है। गद्य, पद्य, नाटक, राजनीति, दर्शन तथा ज्योतिष आदि जीवन का कदाचित् ही कोई ऐसा क्षेत्र होगा जिसमें संस्कृत का योगदान अप्रतिम न रहा हो। यही कारण है कि अतीत युग से आज तक वह पाश्चात्य विद्वानों और मनीषियों तक को अपने अध्ययनाध्यापन की प्रेरणा से अभिभूत करती आ रही है।

इस प्रकार हमारी पैतृक भाषा (संस्कृत) और उसका समृद्ध साहित्य हमारी सांस्कृतिक परम्पराओं के ज्ञान का एक अचूक साधन बना हुआ है। इसके द्वारा प्रदत्त सांस्कृतिक सम्पदा की महत्ता तो इतनी विपुल है कि यदि हम अपनी इस धरोहर से परिचित होना तथा उसकी रक्षा करना चाहते हैं तो हमें संस्कृत के अध्ययनाध्यापन को जीवन की एक अनिवार्य आवश्यकता के रूप में ग्रहण करना होगा।

वस्तुतः संस्कृत भाषा और उसका वैभवशाली साहित्य हमारे लिए एक ऐसे 'काल-पात्र' का रूप है जिसमें हम अपने समुन्नत और गौरवपूर्ण अतीत की वैचारिक तथा सांस्कृतिक समृद्धि की झाँकी एक साथ देख सकते हैं।

किन्तु खेद का विषय है कि आज अपने ही देश में उसकी स्थिति अत्यन्त द्वन्द्वात्मक तथा दयनीय हो गई है और देशी-विदेशी भाषाओं के अन्तर्विरोध के कारण वह उत्तरोत्तर अपने ही परिवृत्त में सिमटती जा रही है। यही कारण इस बात का भी है कि आज उसका पठन-पाठन मूलभाषा के रूप में न होकर एक वैकल्पिक भाषा के रूप में हो रहा है। इसके साथ ही यह भी उल्लेखनीय है कि जहाँ एक ओर संस्कृत के अध्ययनाध्यापन का इतना अधिक महत्व है वहीं दूसरी ओर इसकी शिक्षण-विधि पर लिखी पुस्तकों की संख्या इतनी नगण्य है कि वह इसके सुचारू पठन-पाठन तथा प्रचार-प्रसार के मार्ग की एक निश्चित बाधा है। कहने की आवश्यकता नहीं कि यह पुस्तक इसी अभाव की पूर्ति को दृष्टि में रखकर लिखी गई है। आशा है संस्कृत के अध्ययनाध्यापन में प्रवृत्त छात्रों तथा अध्यापकों को इससे समुचित लाभ होगा।

सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय

५-१०-७९ वाराणसी।

वाचस्पति द्विवेदी

शिक्षाशास्त्र-विभाग

विषय—सूची

सन्दर्भ-ग्रंथ-सूची

[संस्कृत]

पाणिनीय—अष्टाध्यायी

पतञ्जलि—महाभाष्य

याज्ञवल्क्य—याज्ञवल्क्य शिक्षा

मम्मट—काव्यप्रकाश

आनन्दवर्द्धनाचार्य—ध्वन्यालोक

सोमदेव—कथासरित् सागर

[हिन्दी]

बलदेव उपाध्याय—संस्कृत साहित्य का इतिहास

वाचस्पति गैरोला—संस्कृत साहित्य का इतिहास

डॉ० सरयूप्रसाद चौबे—अध्यापन विधियाँ

डॉ० हरिदत्त शास्त्री—संस्कृत काव्यकार

मंगलदेव शास्त्री—तुलनात्मक भाषा शास्त्र

चन्द्रशेखर पाण्डेय—संस्कृत साहित्य की रूपरेखा

गौरीशङ्कर—संस्कृत शिक्षा-विधि

[English]

1. The Teaching of Sankrit—1965
Prof K. Rama varma Raja : Sankrit Education Society. Madras.
2. A New Aproach to Sanskrit Bokil Porasnis.
3. The Problem of Sanskrit Teaching : Huparikar.
4. D. G. Apte and P. K. Dongre : Teaching of Sanskrit in Secondary Schools.
5. S. P. Chaube : Some Foundations of Education.
6. R. K. Mookerji : Ancient Indian Education.
7. A. S. Altekar : Education in Ancient India.
8. Yoakam and Simpson : Modern Methods and Techniques of Teaching.
9. Report of the Sankrit Commission–1958 Government of India. New Delhi
10. Report of the Secondary Education Commission of India–1953 New Delhi.
11. Report of the official language Commission Government of India. New Delhi 1956

१

संस्कृतभाषा की महत्ता तथा पाठ्यक्रम में उसका स्थान

संस्कृत भाषा और उसका साहित्य

इस देश में संस्कृत देववाणी के रूप में मान्य है तथा संसार की प्राचीनतम भाषाओं में परिगणित है। इसका शब्द-सामर्थ्य अद्भुत है। इस दिशा में वह इतनी समृद्ध भाषा है कि आज के नवीनतम विषयों के लिए भी पारिभाषिक तथा अन्य प्रकार के शब्द दे सकती है। उसके उपसर्गों, विसर्गों तथा प्रत्ययों आदि से अब तक न जाने कितने नए शब्दों का सृजन हो चुका है तथा आगे भी होता रहेगा। इसके अतिरिक्त अपनी कोमल कान्त पदावली और माधुर्य के लिए वह अपने उद्भव-काल से ही प्रसिद्ध रही है। संस्कृत भारत की राष्ट्रीयता तथा सांस्कृतिक एकता की आधारभूमि है। इस देश की अधिकांश भाषाओं की जननी भी संस्कृत ही है। अतः उसकी राजनीतिक महत्ता भी अक्षुण्ण है। व्याकरण, गद्य और काव्य की दृष्टि से तो उसका महत्त्व आज भी अप्रतिभ बना हुआ है। वाल्मीकि, कालिदास, दण्डी, अश्वघोष, बाणभट्ट, माघ और सुबंधु प्रभृति सैकड़ों लेखक[illegible] संस्कृत साहित्य [illegible] विभिन्न विधाओं को अपनी प्रतिभा से समृद्ध किया। इनको रचनाएँ विश्व की श्रेष्ठतम क्रांतदर्शी [illegible] सम्मानित हैं तथा काव्य, नाटक, गद्य, दर्शन और ज्योतिष की दिशा में संस्कृत की विपुल सम्पदा विश्व के किसी भी अन्य साहित्य की अपेक्षा कहीं अधिक उत्कृष्ट है।

मानव-जीवन का कदाचित् ही कोई ऐसा क्षेत्र होगा जिसमें संस्कृत साहित्य ने अपनी प्रभूत, पाण्डित्यपूर्ण एवं उपयोगी सामग्री से योगदान न दिया हो। इस तथ्य का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

१. **भारतीय दर्शन**—संस्कृत साहित्य भारतीय दर्शन की अमूल्य निधि संजोए हुए है। उसका दर्शन पाश्चात्य दर्शन से कहीं अधिक उच्च धरातल पर स्थित रहा है। वस्तुतः भारतीय दर्शन ही संसार का सर्वोच्च दर्शन है तथा अद्यावधि संसार के दर्शनप्रेमी विद्वानों को अपनी ओर आकर्षित करता जा रहा है। आध्यात्मिकता की दिशा में पाश्चात्य सदा से भारत का मुखापेक्षी रहा है और उसका कारण भारतीय दर्शन ही हैं। पाश्चात्य में प्लेटो के जिस दर्शन की भूरि-भूरि प्रशंसा की जाती हैं यदि उसका विश्लेषण किया जाय तो ज्ञात होगा कि उसका आधार भारतीय दर्शन ही है। उसके द्वारा किया हुआ मानव-समाज का कर्मानुसार वर्ग-विभाजन प्रकारान्तर से हमारे यहाँ के वर्ग-विभाजन का ही अनुसरण करता है। हमारे यहाँ दर्शन को जैनदर्शन, बौद्धदर्शन चार्वाक दर्शन आदि अनेक शाखा-प्रशाखाओं का उद्भव और विकास हुआ। भारतीय दर्शन को चरमोत्कर्ष तक पहुँचाने वाले विद्वानों के ये नाम हैं :—वाचस्पति मिश्र उदयनाचार्य आदि।

२. **भूगोल-खगोल**—इस दिशा में भी भारत विश्व का अग्रणी रहा है। आर्यभट्ट इस विद्या के आदि प्रणेता थे। इस बात की खोज सर्वप्रथम उन्होंने ही की कि पृथ्वी सूर्य के चतुर्दिक परिक्रमा करती है और सूर्य स्थिर रहता है। उनका जन्म इस क्षेत्र में पदार्पण करने वाले पाश्चात्य विद्वानों से कहीं अधिक पहले अर्थात् सन् ४७६ में हुआ था। इसके अतिरिक्त सन् ११५० ई० में भास्कराचार्य ने 'सिद्धान्त शिरोमणि' की रचना की जो कि खगोलविद्या की अत्यन्त प्रामाणिक रचना है। इसके ३२३ वर्षों बाद कापरनिकस का तथा ४११ वर्षों बाद गैलीलियो का जन्म हुआ। इन पाश्चात्य विद्वानों ने कोई नई गवेषणा नहीं की अपितु उसी बात को दोहराया कि पृथ्वी गोल है तथा वह सूर्य के चतुर्दिक चक्कर काटती है—

किन्तु पाश्चात्य ने भारतीय विद्वानों के इस पूर्वान्वेषण को उपेक्षापूर्ण दृष्टि से ओझल रखते हुए इसका श्रेय उक्त विद्वानों को दिया है।

३. **रेखागणित**—ज्यामिति के सैंताळीस [illegible] सर्व प्रथम बौद्धायन के सूत्र [illegible] सत्याप [illegible] पथोगोरस ने जो कि यूक्लिड-ज्यामित का पाश्चात्य प्रणेता है, इसको चर्चा भी नहीं की है। इसी प्रकार पाश्चात्य देशों को सोलहवीं शताब्दी तक त्रिभुज का ज्ञान नहीं हुआ था; जबकि हमारे यहाँ

इसका वर्णन सूर्य-सिद्धान्त में उससे सैकड़ों वर्ष पूर्व हो चुका था। रेखागणितीय आकृतियों का प्रयोग हमारे देश में सिन्धुघाटी-सभ्यता के अवशेषों में उपलब्ध है। इससे भी पूर्व वैदिक साहित्य में आयत, वर्ग, वृत्त आदि का उल्लेख किया जा चुका था। ज्यामितिशास्त्र के लिए आर्यभट्ट, ब्रह्मगुप्त, तथा वाराहमिहिर का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

४. बीजगणित—बीजगणित वस्तुतः भारत की ही मौलिक देन है। यह देन सबसे प्राचीन तथा लगभग ५००० वर्षों पूर्व की है। इसका प्रथम उल्लेख आर्यभट्ट की रचना में मिलता है। तदनन्तर सातवीं शताब्दी की रचना 'ब्राह्म-स्पुट सिद्धान्त' में इस विद्या के अनेक प्रकरणों का विस्तृत उल्लेख मिलता है। उसके उपरान्त भास्कराचार्य द्वितीय ने बीजगणित के अन्य प्रसंगों की भी चर्चा की है। इसके अतिरिक्त त्रैराशिक नियम, वर्गमूल तथा भिन्नों के गुणा–भाग के नियमों का भी प्रतिपादन किया गया। भास्कराचार्य की 'लीलावती' महावीराचार्य का–'गणित सार-संग्रह', नेमिचन्द्र का 'त्रिलोक सार' गणित तथा क्षेत्रमिति की प्रसिद्ध रचनाएँ हैं।

बीजगणित के अन्य भारतीय आचार्यों में ब्रह्मगुप्त, श्रीधर, महावीर, और श्रीपति का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

५. चिकित्सा विज्ञान—चिकित्सा विज्ञान का दर्शन हमें पहले ऋग्वेद में ही मिल जाता है। अश्विनी कुमार, वरुण तथा रुद्र आदि देवता चिकित्सक के के रूप में ही वर्णित हैं। ऋग्वेद में नेत्र-चिकित्सा, हड्डी जोड़ने की क्रिया तथा कुष्ठ-चिकित्सा आदि अन्य अनेक रोगों के उपचार का उल्लेख मिलता है। कालान्तर में तो भारद्वाज, पुनर्वसु, चरक, सुश्रुत, जीवक, वाग्भट्ट आदि चिकित्सा शास्त्र के अनेक विद्वान् हुए। इस प्रकार आयुर्वेद में उस समय केवल औषधि-विज्ञान का ही नहीं अपितु शल्यविज्ञान के क्षेत्र में भी अभूतपूर्व प्रगति हुई।

संस्कृत में पशु-चिकित्सा का क्षेत्र भी उपेक्षित नहीं रहा। पशुओं के अनेक रोगों का निदान उस समय तक हो चुका था। उस समय केवल अरब देशों में ही समानान्तर रूप में पशु-चिकित्सा पर ध्यान दिया गया था। महाभारत काल में इस दिशा में विशेष उन्नति हुई। महाराज अशोक के शासन में तथा गुप्त-साम्राज्य के समय इस दिशा में और भी अधिक उन्नति हुई। हाथियों तथा घोड़ों की चिकि[illegible] में भी मिलता है।

६. भौतिक विज्ञान—संस्कृत वाङ्मय में भौतिक विज्ञान के आदि प्रणेता कणाद मुनि थे। अणुओं द्वारा सृष्टि के निर्माण की महत्त्वपूर्ण खोजकर उसी

समय उन्होंने अणुवाद का सिद्धान्त स्थिर किया था। भौतिक विज्ञान के दूसरे आचार्य उदयनाचार्य तथा तीसरे वाचस्पति मिश्र थे। ईसा की दूसरी शताब्दी में ही हमारे भौतिक विज्ञानियों ने कुतुबनुमा (दिशासूचक यंत्र) का आविष्कार कर लिया था। ध्वनियों के विश्लेषण के लिए विज्ञानभिक्षु का नाम प्रसिद्ध ही है। इस प्रकार हमारे यहाँ उसी युग में भौतिक विज्ञान की इन सूक्ष्म दिशाओं में पर्याप्त प्रगति हो चुकी थी।

७. रसायन शास्त्र—रसायन शास्त्र में भी संस्कृत वाङ्मय की देन अक्षुण्ण है। ईस्वी शताब्दी के प्रारम्भ में ही नागार्जुन ने अपने 'रस-रत्नाकर' नामक ग्रंथ में गंधक के शोधन तथा पीतल द्वारा सोने के निर्माण-विधि का वर्णन किया है। बारहवीं शती में 'रसहृदय' तथा 'रसार्णव' नामक ग्रंथों की रचना हुई। उसी समय पीतल तथा रसक के योग से जस्ते के उत्पादन की विधि भी निकाली गई। सोमदेवकृत 'रसेन्द्र चूड़ामणि' नामक एक अन्य ग्रंथ में अनेकानेक रासायनिक प्रयोगों का विवरण प्रस्तुत है।

८. वनस्पति तथा जीवविज्ञान—वनस्पति विज्ञान का विकास वैदिक काल में ही हो चुका था। ऋग्वेद इसका प्रामाणिक ग्रंथ है। महाभारत-काल में वनस्पतियों का एकशुङ्गा अंशमुती, प्रतन्वती तथा काण्डिनी आदिनामों से वर्गीकरण भी किया गया था।

जैन साहित्य में जीवों को उनके लक्षणों के आधार पर वर्गीकृत किया गया था। शतपथ में मानवशरीर में ३६० अस्थियों की गणना बताई गई है। सुश्रुत में मच्छर-मक्खियों तथा बिच्छुओं का भी वर्गीकरण वर्णित है।

९ विमानविज्ञान—विविध यंत्रों तथा विमानों की रचना का उल्लेख भी संस्कृत वाङ्मय में किया गया है। अथर्ववेद में यंत्र-चालित कृत्या नामक भूमि का उल्लेख मिलता है। कौटिल्य शास्त्र में अनेक यंत्रों का वर्णन है जिनका प्रयोग युद्धों के लिए होता था। रघुवंश में विमान का उल्लेख है। राम के पुष्पक विमान की गाथा प्रसिद्ध ही है। भरद्वाज की 'यंत्र सर्वस्व' नामक रचना तो वैमानिक भौतिकी का ही ग्रंथ है।

१०. कामशास्त्र—संस्कृत वाङ्मय में इस विद्या के आचार्य प्रजापति हैं। नन्दी, श्वेतकेतु, दत्तक, चारायण, सुवर्णनाम, वात्स्यायन, कोक, जयदेव तथा नागार्जुन आदि अनेक विद्वानों ने [illegible] रक्षा, सत्यशास्त्रका बड़ी सूक्ष्म विवेचना की है।

११. राजनीति एवं अर्थशास्त्र—राजनीति तथा अर्थशास्त्र के क्षेत्र में चाणक्य का योगदान जगत् प्रसिद्ध है और वह आज भी अप्रतिम है। उनके

अर्थशास्त्र का अनुवाद अनेक विदेशी भाषाओं में भी हो चुका हैं। राजाओं के वंशजों को राजनीतिक तथा नैतिक शिक्षा देने के लिए पंचतंत्र तथा हितोपदेश जैसे ग्रंथों की रचना की गई थी। कथा के माध्यम से राजपुत्रों को समुचित व्यावहारिक शिक्षा देना इन रचनाओं का लक्ष्य था। इन ग्रंथों की लोकप्रियता आज भी कम नहीं हुई है तथा विश्व की अनेक भाषाओं में इनका रुपान्तरण हो चुका है। पश्चिम में ईसप की लघु कथाएँ प्रसिद्ध हैं किन्तु उनमें कई कथाएँ पंचतंत्र की स्पष्ट छाप लेकर चलती हैं जो कि उसके शताब्दियों पूर्व की रचना है।

१२. व्याकरण—जैसे संस्कृत भाषा संसार की प्राचीनतम भाषाओं में है ठीक उसी प्रकार उसके व्याकरण की रचना भी ईसा पूर्व की छठीं शताब्दी में ही हो चुकी थी। आचार्य पाणिनि इस शास्त्र के अद्वितीय प्रणेता माने जाते हैं तथा महर्षि पातंजलि का 'महाभाष्य भी व्याकरण की अत्यन्त प्रामाणिक रचना है। इसी प्रकार यास्क का निरुक्त भाषाविज्ञान की प्रसिद्ध कृति है।

१३. संस्कृत काव्य—संस्कृत काव्य अपने रचना-कौशल, कल्पना, माधुर्य,:ओज, प्रसाद आदि के गुणों से आप्लावित है। विश्व की प्राचीन काव्य-सम्पदा में कदाचिद् संस्कृत से अधिक समृद्ध अन्य कोई वाङ्मय नहीं है। महर्षि बाल्मीकि, कालिदास अश्वघोष, भवभूति, भास, श्रीहर्ष, माघ तथा सुबंधु आदि की कृतियाँ बे जोड़ हैं। तब से न जाने कितनी कृतियाँ इस देश की विभिन्न भाषाओं में उनके कथानक की पृष्ठभूमि पर निर्मित हो चुकी हैं। संस्कृत का गद्य भी अत्यन्त समृद्ध और वैभवशाली है। सुबंधु, दण्डी और वाणभट्ट की रचनाएँ साहित्यिक गद्य के उत्कृष्टतम रूप हैं तथा हमारे लिए गौरव की वस्तु हैं। इसी प्रकार संस्कृत का कथा-साहित्य भी अपने ढंग की अनूठी वस्तु है। पंचतंत्र, कथा-सरित्सागर, हितोपदेश [redacted](मित्रलाभ) आदि कथा-साहित्य की उत्कृष्ट रचनाएँ हैं। इन कथाओं की विशेषता यह रही है कि कथ्यके मनोरंजनात्मक आवरण में इनके द्वारा अध्येता को अत्यन्त परोक्ष तथा मनोवैज्ञानिक ढंग से नैतिक, आचारिक तथा राजनीतिक शिक्षा मिलती है। इसके अतिरिक्त अनेक सुन्दर कथाओं का नियोजन संस्कृत के महाकाव्यों में भी हुआ है।

१४. नाट्य साहित्य—नाटक को कवित्व की अंतिम सीमा माना गया है। 'नाटकान्[illegible] प्रमाण है। नाट्य साहित्य तथा नाट्य-कला में आदिकाल से ही संस्कृत वाङ्मय भी [illegible] पहुँ[illegible] चुका था। भारत में इसकी उत्पत्ति वैदिक काल में ही हो चुकी थी। यह बात ऋग्वेद के सूत्रों से स्पष्ट है जिसमें सोम-विक्रय के समय एक प्रकार का अभि-

नय का प्रचलन था और जिसका उद्देश्य दर्शकों का मनोरंजन था। भरत मुनि इसके आदि आचार्य थे। उन्होंने नाटकों के भेदोपभेद, नाट्यशाला तथा प्रेक्षागृह की रचना आदि का विवेचन अपने नाट्यशास्त्र में बड़ी सूक्ष्मता से किया है। भास, भवभूति, कालिदास, विशाखदत्त, शूद्रक, श्रीहर्ष आदि संस्कृत नाटककारों की कृतियाँ विश्व के नाट्य साहित्य की अमर रचनाएँ हैं।

संस्कृत का सांस्कृतिक महत्त्व

वस्तुतः संस्कृत भाषा और उसके साहित्य की शीर्षस्थ महत्ता सांस्कृतिक है। अपनी जिस सांस्कृतिक निधि के लिए अनादि काल से ही भारत विश्व का अग्रणी रहा है वह संस्कृत की ही देन है तथा अपने मौलिक रूप में संस्कृत में ही सुरक्षित है। यह सम्पदा हमें अपने पूर्वजों से उत्तराधिकार में प्राप्त है। वास्तविकता तो यह है कि संस्कृत के अध्ययन के बिना भारतीय संस्कृति से परिचय प्राप्त करना ही असंभव है। यह संस्कृति ही भारत की आत्मा है यह कहना अत्युक्ति न होगी। इसके बल पर इस देश में जो सामाजिक मर्यादाएँ स्थापित हुई थीं उनका उदाहरण संसार में अन्यत्र कहीं नहीं मिलता। उसकी आत्मा की सच्ची पहचान संस्कृत भाषा और उसके साहित्य में ही निहित है। तत्कालीन भारतीय संस्कृति के वैभव का वर्णन अनेक विदेशी यात्रियों तथा विद्वानों ने किया है।

संस्कृत की महत्ता पर कतिपय विद्वानों के विचार

इस संदर्भ में संस्कृत वाङ्मय पर समय-समय पर विभिन्न विद्वानों ने जो विचार व्यक्त किए हैं उन पर भी दृष्टिनिक्षेप कर लेना उचित होगा—

१. "भौतिक एवं आध्यात्मिक शिक्षा में समन्वय संस्कृत के अध्ययन के अतिरिक्त किसी अन्य कार्य द्वारा अधिक नहीं हो सकता..........।"

—भू० पू० राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद

२. "यदि मुझसे पूछा जाय कि भारत की सबसे विशाल सम्पत्ति क्या है और उत्तराधिकार के रूप में उसे सर्वोत्तम कौन-सी वस्तु प्राप्त हुई है तो मैं निःसंकोच उत्तर दूँगा कि वह सम्पत्ति संस्कृत भाषा और साहित्य एवं उसके भीतर जमा सारी पूंजी ही है।"

—भू० पू० प्रधान मंत्री, पं० जवाहर लाल नेहरू

३. "संस्कृत अनेक भारतीय भाषाओं की [illegible] स्कृत ने हम भार[illegible] राक्षा, सत्य[illegible] इतनी छाप छोड़ी है जितनी हम चेतन मस्तिष्क से भी नहीं जान पाते।"

—भू० पू० राष्ट्रपति डा० सर्वपल्ली राधाकृष्णन

४. "जो संस्कृत नहीं जानता वह संस्कृत (Cultured) नहीं कहा जा सकता क्योंकि प्राचीन काल से ही हमारी जीवन-पद्धति एवं परम्परा केवल संस्कृत में ही प्रगट हुई है।"

–श्री अनन्त शयनम् आयंगर
भू० पूर्व राज्यपाल, बिहार

५. "इसके (संस्कृत के) कुछ ज्ञान के विना वह (भारतीय) अपनी परम्परा के मूल्य को समझ नहीं सकता, न ही इससे प्रेरणा ग्रहण कर सकता है, न ही वह भारत का सही अर्थ में प्रतिनिधित्व कर सकता है।"

–श्री के० एम० मुंशी
भू० पू० राज्यपाल, उत्तर प्रदेश

६. "भारत को गौरवपूर्ण उत्तराधिकार के रूप में संस्कृत प्राप्त हुई है। इसने राष्ट्र को एकता के सूत्र में बाँधा है और इस भाषा के द्वारा जो संस्कृति प्रवाहित हुई है, उसने सम्पूर्ण मानव-सभ्यता के क्षेत्र में चमत्कारपूर्ण योगदान दिया हैं।"

–प्रो० हीरेन मुखर्जी के मई सन् १९५९ लोकसभा के भाषण का एक अंश।

श्रीमती एनीबेसेन्ट का तो कहना है कि यदि हमें सचमुच प्राचीन भारतीय आदर्शों को पुनरुज्जीवित करना एवं शान्ति, सौन्दर्य, साहित्य तथा विश्व-बन्धुत्व की भावना की दिशा में संसार का नेतृत्व करना है तो हमें भारतीय शिक्षा-प्रणाली को पुनः अपने प्राचीन आदर्शों के साँचे में ढालना होगा। यह बात उनके निम्न उद्गार से स्पष्ट है—

We have to resolve to revive the ancient ideals of Indian education and Indian Culture to teach our children in the mother-tongue, to make Indian ideals the basis of Indian civilization, renouncing the hybrid and sterile ideas of angle-cised Indianism, and to adopt them to new form, instinct with the ancient life, and mouldings it into a glorious body for the ancient spirit, India will then lead the world into a new Era [illegible] and Beauty, Brotherhood and Peace."

The Besant spirit : Ideals in Edncation 1913

The Theosophical Publishing House Madras,

संस्कृत की वर्तमान स्थिति—किन्तु अत्यन्त दुःख की बात है कि जिस भाषा ने इस देश को संस्कृति, सभ्यता तथा ज्ञान-विज्ञान के विविध क्षेत्रों में अनादिकाल से ही इतना योगदान देकर उसे समृद्ध किया वही आज ह्रासोन्मुख होती जा रही है। अतः उसकी विपुल सार्वभौमिक महत्ता को देखते हुए उसके ह्रास के कारणों पर दृष्टिपात कर लेना भी उचित होगा। संस्कृत भाषा के ह्रास के कारण निम्न हैं—

१. पूर्वापेक्षा संस्कृत पाठ्यक्रम का संकोच, जिसके कारण बालक पहले की अपेक्षा आज संस्कृत के सामान्य गद्य-पद्य का भी बोध ग्रहण नहीं कर पाते।

२. पाली तथा अर्धमागधी के साथ स्कूलों के पाठ्यक्रम में संस्कृत की प्रतिद्वद्विता, क्योंकि ये दोनों ही भाषाएँ संस्कृत के विकल्प में पढ़ाई जाती हैं तथा दोनों ही संस्कृत की अपेक्षा सरल हैं। अतः उत्तीर्णता हेतु छात्रों को अपनी ओर अधिक आकर्षित करती हैं।

३. राजनीतिक कारणों अथवा राष्ट्र के विकास के हित की दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण ठहराते हुए वर्तमान पाठ्यक्रम में अनेक नए विषयों का समावेश।

४. कुछ लोग संस्कृत को एक जातिविशेष अर्थात् केवल ब्राह्मणों की भाषा मानकर उसका तिरस्कार करते हैं। वस्तुतः इस प्रकार का मत सुविचारित न होकर ब्रिटिश कालीन दासता की प्रवृत्ति का ही द्योतक है।

५. क्षेत्रीय भाषाओं पर अनभीष्ठ बल दिया जाना।

६. आज की अतिशय वैज्ञानिक दृष्टि ने भी प्राचीन भाषाओं तथा उनमें निहित विचारों के प्रति अरुचि उत्पन्न कर दी है।

७. आफीशियल लैंग्वेज कमीशन की संस्तुति के अनुसार मृतप्राय हुई अंग्रेजी का पुनरुज्जीवित होना। वस्तुतः इस स्थिति पर संस्कृत कमीशन ने भी अपनी चिन्ता व्यक्त की है।

पाठ्यक्रम में संस्कृत का स्थान

संस्कृत भाषा [illegible] देश को अधिकांश [illegible] तथा उनकी लिपियाँ [illegible] राठी, सत्याग [illegible] न्तर हैं। हिन्दी तथा नेपाली में तो कोई लि[illegible]त भेद भी नहीं है। उसकी अगाध वैचारिक और सांस्कृतिक सम्पदा के विषय में हम ऊपर जान चुके हैं। अतः हमारे पाठ्यक्रम में उसका क्या स्थान

होना चाहिए यह प्रश्न स्वतः महत्वपूर्ण हो जाता है। इसी महत्ता को दृष्टिगत रखते हुए इस दिशा में किए गए अब तक के प्रयासों का आकलन कर उस पर विचार करना आवश्यक है। नीचे हम उसी की चर्चा करेंगे। पाठ्य विषय के रूप में संस्कृत के अध्यापन तथा पाठ्यक्रम में उसके स्थान के संबंध में सम्प्रति तीन प्रकार के मत प्रचलित हैं और वे ये हैं—

१. प्रथम मत—प्रथम मत तो पाठशालाओं में संस्कृत के अध्ययनाध्यायन के सर्वथा विरुद्ध है। इसके अनुयायिओं ने अनुसार संस्कृत एक क्लिष्ट तथा रुक्ष विषय है और वह इस देश के एक वर्गविशेष (अर्थात् ब्राह्मणों) की भाषा है और उन्हीं के लिए उपयोगी है। अतः सर्वसाधारण के लिए अनुपयोगी और अनावश्यक है। उसे पाठ्यक्रम में स्थान देने की आवश्यकता नहीं है।

२. द्वितीय मत—इस मत के समर्थक विद्वानों के अनुसार संस्कृत एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भाषा है। वह अनेक भारतीय भाषाओं की जननी है तथा उसकी सांस्कृतिक महत्ता और देश की अखण्डता को बनाए रखने की क्षमता को देखते हुए उसका अध्ययनाध्यापन आवश्यक है। इतना ही नहीं जब कि विदेशी भी इसकी वैचारिक सभ्यता पर मुग्ध हैं तथा इसके अध्ययनाध्यापन और अनुवाद में प्रवृत्त हो रहे हैं तो अपने ही देश में इसकी उपेक्षा एक अशोभन बात होगी। अतः पाठ्यक्रम में इसे एक निश्चित स्थान मिलना चाहिए।

उल्लेखनीय है कि यद्यपि द्वितीय मत प्रथम मत के सर्वदा विपरीत है तथा संस्कृत भाषा के अध्यनाध्यापन की महत्ता को स्पष्ट रूप से केवल स्वीकार ही नहीं करता अपितु उसके अध्ययन का समर्थन भी करता है तथापि इस मत के अनुसार पाठ्यक्रम में उसका स्थान वैकल्पिक हो रहता है, अनिवार्य नहीं।

३. तृतीय मत—तृतीय मत उन विद्वानों का है जो निःसंकोच रूप से पाठ्यक्रम में संस्कृत को अनिवार्य रूप में स्थान देने के पक्ष में है। भारत सरकार की ओर से डा० सुनीत कुमार चटर्जी की अध्यक्षता में एक संस्कृत आयोग का गठन भी किया गया था। इस आयोग ने अपने प्रतिवेदन में इस बात की स्पष्ट संस्तुति की है कि संस्कृत भाषा को माध्यमिक विद्यालयों के पाठ्यक्रम में अनिवार्य कर देना चाहिए। तदनुसार आयोग ने माध्यमिक विद्यालयों के भाषा-पा[illegible] संस्कृत को स्थान देने की [illegible] से निम्न योजनाओं का प्रस्ताव-प्रस्तुत [illegible] ढग से कर सके। मो[illegible]

[illegible] भी अ[illegible]

प्रथम योजना

१. मातृभाषा (अथवा क्षेत्रीय भाषा)

२. अंग्रेजी (अथवा हिन्दी अथवा भाषा-भाषी प्रदेशों के लिए अन्य आधुनिक भाषा—(संभवतः) कोई दक्षिणी भाषा हो तो अच्छा) ।

३. संस्कृत (अथवा कोई अन्य प्राचीन भाषा) ।

द्वितीय योजना

१. मातृभाषा (अथवा क्षेत्रीय भाषा) ।

२. अँग्रेजी ।

३. हिन्दी (अथवा अन्य भारतीय भाषा) ।

४. संस्कृत ।

तृतीय योजना

तृतीय योजना लगभग द्वितीय योजना के ही सदृश है । किन्तु इसके अनुसार संस्कृत में परीक्षा न होनी चाहिए न परीक्षाफल पर उसका कोई प्रभाव पड़ना चाहिए । किन्तु विशेषयोग्यता तथा छात्रवृत्ति के लिए वह एक आधार का काम अवश्य करे । उल्लेखनीय है कि संस्कृत के परीक्ष्य विषय न होने के कारण आयोग ने इस योजना पर अपनी सहमति नहीं दी ।

चतुर्थ योजना

इस योजना के अनुसार द्वितीय योजना की प्रथम तीन भाषाओं को स्वीकार करते हुए संस्कृत जो मातृभाषा अथवा हिन्दी अथवा दोनों के पाठ्यक्रम में अनिवार्य रूप से सम्मिलित कर पढ़ाने की संस्तुति की गई । पाठ्यक्रम की अवधि को कम से कम पाँच वर्ष स्वीकार किया गया तथा संस्कृत में उत्तीर्णता अनिवार्य कर दी गई ।

मान्यताक्रम में आयोग ने प्रथम योजना को शीर्षस्थ स्थान दिया । उसके उपरान्त द्वितीय योजना को प्राथमिकता दी है तथा चतुर्थ योजना को तृतीय स्थान पर रखा है । शेष पर बल देना उसने आवश्यक नहीं समझा—

आयोग के अनुसार प्रथम पाँच वर्षों तक केवल मातृभाषा की शिक्षा देना ही उचित होगा । उसके अनन्तर अंग्रेजी की शिक्षा का श्रीगणेश होना चाहिए तथा सातवीं कक्षा से संस्कृत की शिक्षा प्रारम्भ करनी चाहिए ।

संस्कृत भाषा आयोग ने संस्कृत की शिक्षा पर पर्याप्त बल दिया है । उसकी दृष्टि में सरकार को स्कूलों तथा कालेजों की शिक्षा [illegible] संस्कृत शिक्षा की पर्या[illegible] [illegible]शाला, सत्या[illegible] [illegible] अन्यथा वर्तमान युग में संस्कृत की शिक्षा को [illegible] प्रोत्साहन मिला है उसे अनपेक्षित क्षति उठानी पड़ेगी । कमीशन की शब्दावली में यह मत इस प्रकार है—

"The Commission urges upon the Government the need for making an adequate provision for the study of Sanskrit in the scheme of general education in the Schools and Colleges, as otherwise the liberalization of sanskrit education which has taken place in modern times will recieve an undesirable set back."

अभ्यासार्थ प्रश्न

१. संस्कृत भाषा के महत्त्व पर प्रकाश डालिए।

२. 'संस्कृत वाङ्मय ज्ञान-विज्ञान का कोष है।'—इस कथन की विस्तृत समीक्षा कीजिए।

३. संस्कृत भाषा की महत्ता और उपयोगिता पर विभिन्न विद्वानों के मतों की विवेचना कीजिए।

४. संस्कृत भाषा के ह्रास के प्रमुख कारणों पर विचार व्यक्त कीजिए।

५. पाठ्यक्रम में संस्कृत के सन्निवेश से सम्बन्धित संस्कृत कमीशन की विभिन्न प्रस्तावित योजनाओं का उल्लेख कीजिए तथा उनपर अपना मत भी व्यक्त कीजिए।

२

विभिन्न स्तरों पर संस्कृत-शिक्षण के उद्देश्य

सम्प्रति इस देश में संस्कृत शिक्षा के संगठन तथा पठन-पाठन के दो रूप मिलते हैं। एक रूप यह है कि उसका अध्ययन अंग्रेजी स्कूलों में छठवीं कक्षा से प्रारम्भ होकर आठवीं कक्षा तक अनिवार्य रूप से चलता है तथा नवीं कक्षा से उसके दो रूप हो जाते हैं—१. अनिवार्य, २. वैकल्पिक। आगे बी० ए० तथा एम० ए० में उसका अध्ययन वैकल्पिक रूप में होता है।

दूसरा रूप वह है जो संस्कृत पाठशालाओं में चलता है। वहाँ पहले छात्र कक्षा पाँच तक मातृभाषा का ज्ञान अर्जित करते हैं और बाद में संस्कृत पाठशालाओं में प्रवेश लेकर प्रथमा, पूर्व-मध्यमा, उत्तर मध्यमा, शास्त्री जौर आचार्य की परीक्षाएँ उत्तीर्ण करते हैं।

पाठशालाओं का अध्यय्यन मूलतः संस्कृत-केन्द्रित अध्ययन होता है जहाँ अपेक्षाकृत संस्कृत पर बल अधिक दिया जाता है। प्रथमा की समकक्षता मिडिल से, पूर्व मध्यमा की हाईस्कूल से, उत्तर मध्यमा की इंटरमिडएट से, से, शास्त्री की बी० ए० से तथा आचार्य की एम० ए० से मानी [illegible]। मूलतः संस्कृत-केन्द्रित शिक्षा सम्पूर्णानन्द संस[illegible] विश्वविद्यालय तथा [illegible] से सम्बद्ध पाठशालाओं में गतिमान है। [illegible] शिक्षा प्रार[illegible]

संस्कृत भाषा की दृष्टि से उस[illegible] शिक्षा [illegible] में पवच[illegible]क किया जा सकता है— [illegible]देश[illegible]

१. प्रा[illegible] [illegible]राला, सत्या[illegible] शैली बालकों की [illegible] [illegible] से ८ तक [illegible] ने शब्दों और [illegible] आती हैं।

[illegible] मध्यस्तर—इसम कक्षा ९ से १२ तक [illegible] संस्कृत-शिक्षा को मानना चाहिए।

३. उच्चस्तर—इसमें विश्वविद्यालयीय परीक्षाओं के स्तर की संस्कृत शिक्षा को स्थान देना चाहिए।

उपर्युक्त विभाजन के अनुसार प्रत्येक स्तर पर संस्कृत-शिक्षण का उद्देश्य भी भिन्न होगा। यह स्तर-विभाजन वस्तुतः बालक की मानसिक क्षमता, उसके आयुगत विकास तथा शैक्षक योग्यता पर निर्भर है। विभिन्न स्तरों पर संस्कृत-शिक्षण के उद्देश्य ये हैं।

प्रारम्भिक स्तर पर संस्कृत-यिक्षण के उद्देश्य

ऊपर कहा जा चुका है कि प्रारम्भिक स्तर से तात्पर्य ६ से ८ तक की कक्षाओं से है। इन कक्षाओं में संस्कृत-शिक्षण के उद्देश्य निम्नांकित हैं—

१. संधि, समास, कारक, शब्द-रूपों तथा धातुरूपों का सामान्य अर्थात् कार्यसाधक ज्ञान कराना।
२. संस्कृत गद्य के शुद्ध पठन का अभ्यास।
३. छात्रों में श्लोकों के शुद्धोच्चारणपूर्वक पठन तथा उनके अर्थग्रहण की क्षमता का विकास करना।
४. मातृभाषा में छोटे-छोटे सरल वाक्यों के संस्कृतानुवाद की क्षमता विकसित करना।
५. संस्कृत के ... श्लोकों के मातृभाषा में अनुवाद ...
६. ... करना।
७. छोटे-छो... अभ्यास।
८. गीत...

मध्यस्तर ...

इसमें ९ से १२ ... के उद्देश्य निम्न हैं ...

... रखते ...त गद्य के ...
...धार्मिक प...
२. ...त क... है उक्त साहित्य के ...प... देना।
३. सं... से संस... में अनुवाद की क्षमता ...
४. लघ... रचना क...
५. सं... आदि का पूर्ण एवं परि...ष्ट ज्ञान देना।
६. सामान्य ...कृत में भावाभिव्यक्ति का अभ्यास करना।

उच्चस्तर पर संस्कृत-शिक्षण के उद्देश्य

ये उद्देश्य वस्तुतः इन्टरमीडिएट से आगे तथा एम० ए० कक्षा तक पर आप्त हैं। उच्चस्तर पर इन्हीं कक्षाओं की गणना की गई है। इसीलिए उसके उद्देश्य भी पूर्वोक्त स्तरों की अपेक्षा अधिक व्यापक होंगे। वे ये हैं—

१. संस्कृत के विविध अनुच्छेदों के उचित स्वर तथा आरोहावरोहपूर्वक पठन का परिपुष्ट अभ्यास।
२. उचित ताल, लय तथा आरोहावरोहपूर्वक संस्कृत श्लोकों को पढ़कर प्रस्तुत करने की परिपुष्ट क्षमता का विकास।
३. संस्कृत साहित्य में विस्तृत भारतीय संस्कृति का अवबोध करना।
४. दीर्घ अनुच्छेदों के सार-लेखन का परिपुष्ट अभ्यास।
५. अपठित का मातृभाषा में अनुवाद कराना।
६. शोधकार्य की दृष्टि और क्षमता उत्पन्न करना।
७. मातृभाषा के उच्चस्तरीय गद्य-खण्डों के संस्कृतानुवाद की क्षमता विकसित करना।
८. साहित्यिक समीक्षा की योग्यता विकसित करना।

इस प्रकार यद्यपि संस्कृत-शिक्षण ... विभिन्न स्तरों पर उद्देश्य-भेद दृष्टिगत होता है तथापि अन्ततोगत्वा ... संस्कृत साहित्य के विस्तृत ज्ञान सहित अपने दे... र दर्शन आदि का विश्वसनीय ज्ञान प्राप्त करना ... । विश्व का सर्वोच्च वाङ्मय संस्कृ... ओं में हुआ है तथा ... कोष से परि... य, व्याकर... प्र... न-शाली भा...

वस्तु...
चरम उद्दे...

अभ...

१. संस्कृत ... तथा ... हैं—
विभिन्न स्त... संस्कृत शिक्षण के ... कीजिए।
२. संस्कृत-शिक्षण का चरम लक्ष्य क्या है?

15 to 47
major damage

...कृत भाषा का ध्वनितत्व

संसार की ... विचार हुआ है। परन्तु
ध्व... न में हुआ है वह अन्यत्र
नहीं ... इस दिशा में विश्व

...भिन्न मत

उल्ले...

... उस ...
... को बोलने के लिए

अभ्यासार्थं प्रश्न

१. शिक्षा में मौखिक भाषा की महत्ता प्रतिपादित कीजिए।

२. मौखिक भाषा की शिक्षा के उद्देश्यों पर प्रकाश डालिए।

३. अच्छे वार्तालाप के गुणों का उल्लेख कीजिए।

४. वार्तालाप के दोषों पर विचार करते हुए उनके निराकरण के उपायों का उल्लेख कीजिए।

५. मौखिक शिक्षा के साधनों की विवेचना कीजिए।

६. वार्तालाप की शिक्षा में निम्नांकित में से किन्हीं तीन की महत्ता पर प्रकाश डालिए—

१. चित्रों पर बातचीत

२. कहानी कहना

३. भाषण

४. रेडियों, टेपरेकार्डर और टेलीविजन

५. अभिनय।

६

पठन-शिक्षण

भाषा का सम्पूर्ण ज्ञान पठन और लेखन—इन दोनों क्रियाओं पर अवलंबित रहता है। इनमें भी पठन की महत्ता शीर्षस्थ हैं क्योंकि लेखन पठन का ही चाक्षुष रूप होता है। पठन की क्रिया में जिन ध्वनियों को हम उच्चरित करते हैं और उन्हीं के दृश्यमान प्रतीक होते हैं। अतः बिना पठन की क्रिया में निष्णात हुए भाषा का ज्ञान अपरिपक्व और अधूरा रहता है। ऐसे ज्ञान को हम कार्य-साधक ज्ञान की भी—संज्ञा नहीं दे सकते, क्योंकि वह एकांगी होता है। पठन का अर्थ किसी शब्द अथवा वाक्य का शुद्धोच्चारण मात्र नहीं हैं। उच्चारण वास्तविक अर्थ [illegible]पूर्वक पठन है। [illegible]न्तु [illegible]

[illegible]रम्भ योग्यता—पठन की शिक्षा आरम्भ करने के पूर्व बालक में कतिपय क्षमताओं के विकास की आवश्यकता रहती है। ये योग्यताएँ शारीरिक भी होती हैं तथा मानसिक भी। शारीरिक दृष्टि से पठन के पूर्व बालक को इस सीमा तक विकसित हो जाना चाहिए कि वह कंठ, तालु, जिह्वा तथा दाँत आदि शारीरिक अवयवों का उचित ढंग से प्रयोग कर सके तथा नेत्र, कर्णेन्द्रिय तथा नासिका का भी प्रयोग समुचित ढंग से कर सके। मानसिक दृष्टि से किसी विषय पर एकाग्रतापूर्वक ध्यान देने की क्षमता भी आवश्यक रहती है।

इन सबके अतिरिक्त उसके घरेलू वातावरण तथा पारिवारिक स्थिति पर भी दृष्टि रखनी पड़ती हैं। बच्चों की शाब्दिक पूंजी का निर्माण मुख्यतः उसी पर निर्भर रहता है। शोध द्वारा प्रमाणित हो चुका है कि जो बालक निम्न और पिछड़े परिवारों से आते हैं उनकी शाब्दिक पूंजी बहुत छोटी होती है तथा इसके ठीक विपरीत उच्च तथा सम्पन्न परिवारों के बालकों की शाब्दिक पूंजी कहीं अधिक होती है। अतः पठनारम्भ में इस पूंजो से पर्याप्त सहायता मिलती है। अध्यापक को इन दोनों ही वर्ग के बालकों की वैयक्तिक शब्द-सम्पदा पर दृष्टि रखकर ही उनको पाठों का विधान करना पड़ता है। उच्च परिवारों के बालक अपने उच्च और सुसंस्कृत परिवार के दैनिक जीवन और वातावरण में व्यवहृत होने वाले न जाने कितने शब्दों का ज्ञान सहज ही में प्राप्त कर लेते हैं। पिछड़े वर्ग के बालकों को यह सुविधा नहीं रहती। उनकी शब्दों की पूंजी सीमित होती है तथा उसमें तद्भव शब्दों का बाहुल्य रहता है। जिसके शुद्ध रूपों का ज्ञान उन्हें पाठशाला में होता है। इन्ही बातों को दृष्टि में रखते हुए आज पाठशाला में प्रवेश के पूर्व बालक की पठनारम्भ योग्यता की जाँच की जाती है। उसकी महत्ता को निर्विवाद रूप से स्वीकार करते हुए ही आज उसकी जाँच के लिए शिक्षाविदों ने अनेकानेक परीक्षणों की उद्भावना भी की है जिन्हें 'पठनारम्भ योग्यता परीक्षा' (Reading Readiness Test) का नाम दिया गया है। इन परीक्षणों में बालक द्वारा विभिन्न रंगों की पहचान तथा विभिन्न वर्गों तथा वस्तुओं के आकृति-भेद की योग्यता भी सम्मिलित रहती है।

संस्कृत पठन की शिक्षा—संस्कृत की शिक्षा-दीक्षा आज के पाठ्यक्रम में कक्षा ६ से निर्धारित की गयी है। अतः बालकों को तब तक शुद्धोच्चारणपूर्वक वाचन का अभ्यास हो चुका रहता है। किन्तु फिर भी जहाँ तक संस्कृ[illegible] भाषा क[illegible]ध है अनेक दिशाओं से हिन्दी अथवा अन्य देशी भाषाओं से [illegible]सकी भि[illegible] के कारण सावधानी अपेक्षित रहती है। उसमें चंद्र बिन्दु, [illegible]ार, हलन्त संधि तथा रूप से युक्त शब्दों के पठन-पाठन पर विशेष बल [illegible] की आवश्यकता की उपेक्षा नहीं की जा सकती।

पठन-शिक्षण की विधियाँ

पठन-शिक्षण की निम्नविधियाँ हैं—

१. अक्षर-बोध विधि

२. देखो और कहो विधि

३. ध्वनिसाम्य-विधि

४. अनुध्वनि-विधि

५. भाषा-शिक्षण-यंत्रविधि

६. समवेत-पाठ विधि

७. संगतिविधि

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है वर्तमान पाठ्यक्रम में ६ठीं कक्षा से संस्कृत की शिक्षा प्रारम्भ होती है। अतः पठनारम्भ का प्रश्न नहीं उठता न संस्कृत के लिए इन विधियों का आश्रय लेने काही प्रश्न उठता है किन्तु फिर भी उनका संक्षिप्त परिचय प्रासंगिक होगा।

अक्षर बोध-विधि में पहले वर्णमाला के विभिन्न अक्षरों का उच्चारणाभ्यास कराया जाता है। जब बालक अक्षरों को पहचान जाते हैं तो उनसे बने छोटे-छोटे शब्दों का ज्ञान कराते हुए बड़े शब्दों तथा मात्रिक शब्दों की ओर अग्रसर हुआ जाता हैं। देखो और कहो—विधि में अध्यापक श्यामपट्ट पर शब्द लिख देते हैं। बालक उसे देखते हैं तथा अध्यापक की सहायता से उन्हें पढ़ते जाते हैं। इसके लिए चार्टों का प्रयोग भी होता है जिनमें शब्दों के साथ उनके चित्र भी बने होते हैं। 'ध्वनि-साम्य-विधि' में समान ध्वनियों वाले शब्दों को एक साथ दिखाया तथा पढ़ाया जाता है। जैसे–रेलें, तेल, खेल आदि।

'अनुध्वनि-विधि' देखो और कहो विधि के समान एक दूसरी विधि है जिसे 'सुनो और कहो विधि भी कहते हैं। इसमें शिक्षक एक-एक शब्द का उच्चारण करता जाता है और क्रमशः छात्र उसे दोहराते चलते हैं।

पाँचवी विधि की शिक्षा लिंग्वाफोन पर आधारित विधि है जिसमें शब्दों का उच्चारण उक्त यंत्र से होता है तथा छात्र उसका अनुसरण करते हैं किन्तु व्यय-साध्य होने के कारण इस देश में उसका प्रयोग नगण्य हैं। ६ठीं विधि 'समवेत-पाठ' विधि है। इसमें अध्यापक पाठ्यवस्तु को पढ़ता जाता हैं तथा सम्पूर्ण कक्षा के बालक उसे सुनते हुए एक साथ अनुकरण-पाठ करते हैं। अंतिम विधि 'संगति-विधि' है। इसे मांतसरी विधि भी कहा जा सकता है क्योंकि मांतसरी की शिक्षा-विधि में इसका उपयोग मुख्य रूप से होता है। इसमें विभिन्न वस्तुओं के चित्रों के सम्मुख उनके नाम-शब्द अंकित रहते हैं। बालक ऐसे कार्डों में वस्तुओं के चित्र देखते हुए उनके नामों को उच्चारण भी करता चलता है।

इनमें से कोई भी विधि एकांतिक रूप से उपयोगी नहीं है। सभी में गुण-दोष मिलते हैं। जैसा कि पहले कहा जा चुका है संस्कृत की शिक्षा प्रारम्भ होने के पूर्व इनमें से किसी एक अथवा एकाधिक के प्रयोग द्वारा पठनारम्भ का कार्य समाप्त हो चुका रहता है। अतः उनकी विस्तृत समीक्षा यहाँ प्रासंगिक नहीं है।

पठन के प्रकार

पठन दो प्रकार के होते हैं—

१. सस्वर पठन

२. मौन पठन

सस्वर पठन—पठन किसी भी प्रकार का हो उसका उद्देश्य बोधपूर्वक पठन होता है। बोधहीन पठन शब्दोच्चारण मात्र है। इससे अधिक उसका कोई मूल्य नहीं होता। संस्कृत शिक्षण के प्रारम्भिक स्तर पर इसकी महत्ता सर्वाधिक होती है क्योंकि शुद्ध पठन की नींव वहीं पड़ती है। मौखिक भावाभिव्यक्ति के साधन के रूप में उसका अभ्यास अत्यन्त मूल्यवान होता है। उसकी आवश्यकता सभा-मंच से लेकर सामान्य सामाजिक जीवन में पग-पग पर पड़ती है।

स्वर पठन के उद्देश्य हैं—

१. शुद्धोच्चारणपूर्वक पठन का अभ्यास

२. लेखक के भावानुसार आरोहावरोहपूर्वक अभिव्यक्तिपूर्ण पठन का अभ्यास।

३. ध्वनियों और ध्वनि-प्रतीकों (अक्षरों) का सापेक्षिक ज्ञान।

४. विरामादि चिन्हों से अनुशासित पठन का उचित अभ्यास।

५. बालक भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से वाक्यांशों अथवा शब्द-समूहों पहचानकर सकें।

सस्वर पठन के भेद

१. आदर्श पाठ

२. अनुकरण पाठ

आदर्श पाठ अध्यापक द्वारा होता है जिसमें वह उपर्युक्त सभी उद्देश्यों को दृष्टि में रखते हुए बालकों के समक्ष वाचन का आदर्श प्रस्तुत करता है। अनुकरण वाचन उस प्रस्तुत आदर्श वाचन का यथातथ्यात्मक अनुकरण होता है, जिससे कि उन्हें पठन की दिशा में समुचित मार्गदर्शन मिल सके।

इसमें सन्देह नहीं कि वाचन एक कला है। यदि एकही पाठ्यवस्तु को अनेक लोग प्रस्तुत करें तो सब का पठन शुद्ध होते हुए भी उसमें अन्तर मिलेगा। उन्हीं में से अन्यों की अपेक्षा कुछ का पठन अधिक भावद्योतक तथा उत्कृष्ट सिद्ध होगा। इससे वाचन की कलात्मकता स्वतः प्रमाणित हो जाती है।

दोषों से सर्वथा मुक्त तथा पठन के अपेक्षित गुणों से सम्पन्न वाचन ही श्रेष्ठ वाचन है। अतः वाचन को दोष-युक्त होना चाहिए। महर्षि याज्ञवल्क्य ने पठन के दोषों का उल्लेख इस प्रकार किया है—

शंकितं भीतमुद्घुष्टमव्यक्तमनुनासिकम्।
काकस्वरं मूर्द्धिनृवतं तथा स्थान विवर्जितम्॥
विस्वरं विरसं चैव विश्लिष्टं विषमाहतम्।
व्याकुलं तालुहीनं च पाठदोषाश्चतुर्दश॥

अर्थात् महर्षि याज्ञवल्क्य के अनुसार पठन के निम्नांकित चौदह दोष होते हैं—

१. शंकालुमुद्रा में पढ़ना
२. भयभीत होकर पढ़ना
३. चिल्लाकर पढ़ना
४. अनस्पष्ट पठन
५. नाक से पढ़ना
६. कौवे की भाँति कर्कश स्वर में पठन
७. मूर्द्धा द्वारा पठन
८. उचित उच्चारण स्थान से च्युत होकर पढ़ना।
९. स्वररहित (निर्जीव) पठन
१०. नीरस (भावाभिव्यक्ति रहित) पठन
११. शब्दों अथवा वर्णों को अनावश्यक रूप में मिला-मिलाकर पढ़ना।
१२. बलाघात की विषमता से युक्त पठन
१३. व्याकुलतापूर्वक पढ़ना
१४. तालुहीन के सदृश्य पठन

पठन के गुण—याज्ञवल्क्य के ही अनुसार पठन के अपेक्षित गुण ये हैं—माधुर्य, वर्णों का स्पष्टोच्चारण, अर्थ-बोध की दृष्टि से वाक्यों का शब्द-समूहों में न्यायसंगत विभाजन, सुन्दर और शुद्ध स्वर, धैर्य तथा उचितलय पूर्णता।

मौन-पठन—सस्वर के समान ही मौन वाचन की भी अपनी विशिष्ट उपयोगिता है। भरे समूह में जहाँ अन्य व्यक्तियों को शान्ति की अपेक्षा हो वहाँ कोई व्यक्ति सस्वर पठन नहीं कर सकता। अतः वहाँ मौन वाचन ही पठन का एक मात्र साधन होता है। इसके अतिरिक्त सस्वर वाचन में ध्वनिपूर्वक पढ़ने के कारण अध्येताको थकान का अनुभव भी शीघ्र होता है। इसके विपरीत मौन-वाचन उच्चारण रहित वाचन होता है जिसमें अध्येताको केवल दृष्टिका प्रयोग-कर पढ़ना होता है। इसमें थकान बहुत कम आती है तथा सस्वर वाचन की अपेक्षा समय भी कम लगता है अर्थात् इस वाचन के माध्यम से थोड़े समय में अधिक मात्रा में अध्ययन किया जा सकता है। अतः आज के मानव के व्यस्त जीवन तथा पठनीय साहित्य की विपुल मात्रा को दृष्टिगत रखते हुए मौन पठन की उपयोगिता अत्यधिक है।

मौन पठन में ध्यान देने योग्य बातें

मौन पठन एक अव्यक्त क्रिया है। सस्वर पठन में उच्चारण तथा वर्तनी आदि की भूलें अध्यापाक के समक्ष आती रहती हैं तथा वह उनका निराकरण भी करवाता चलता है किन्तु मौन पठन में यह संभव नहीं है। अतः उसके समुचित अभ्यास के लिए निम्न सावधानियाँ अपेक्षित रहती हैं—

१. अभ्यास की प्रारम्भिक अवस्था में मौन-पठन के लिए गहन विचारों से युक्त सामग्री न देकर छोटे-छोटे वाक्यों में प्रस्तुत तथा सामान्य विचारों से युक्त पाठ्यवस्तु ही देनी चाहिए।

२. यदि पाठ्यवस्तु के मूल अंशों पर प्रश्न बनाकर उन्हें एक-एक कर श्यामपट्ट पर अंकित करते हुए उनसे संबंधित अंश ही क्रमशः पढ़ने को दिए जायँ तथा उनसे उन प्रश्नों के उत्तर मांगे जायँ तो इससे अभ्यास अच्छा होगा तथा बालकों में सूक्ष्मदर्शिता तथा सारग्राही दृष्टि का विकास होगा।

३. मौन पठन का अभ्यास किंचित् परिपक्व हो जाने पर छात्रों को पूर्वापेक्षा समय कम देकर उतने ही समय में अधिक मात्रा में पढ़ने के लिए प्रोत्साहित किया जाय।

इससे मौन पठन की गति में वृद्धि होगी तथा थोड़े समय में विषय-वस्तु के अधिक ग्रहण की क्षमता का विकास होगा। किन्तु इस प्रकार विकसित गति की भी एक सीमा होती है। उसे काल्पनिक आधार पर बढ़ाया नहीं जा सकता। अतः यह कार्य सतर्कतापूर्वक करना चाहिए तथा कतिपय शीर्षस्थ गति वाले

छात्रों की गतियों का औसत लेकर मात्र वहीं तक अपना लक्ष्य निर्धारित करना चाहिए। किन्तु यह सब होते हुए भी निम्न स्तर के छात्रों के साथ कड़ाई नहीं करनी चाहिए क्योंकि सबकी क्षमता एक-सी नहीं होती। इसमें अधिकांश छात्रों के अधिकतम लाभ को ही उद्देश्य मानकर चलना उचित होता है।

शब्द-भण्डार की वृद्धि

मौन वाचन से बालकों के शब्दकोष की वृद्धि तथा बहुज्ञता उद्देशित रहती है। द्रुतपाठ की पुस्तकों का निर्धारण मुख्यतया मौनवाचन के लिए ही होता है। उनसे नए-नए शब्दों का ज्ञान बढ़ता है तथा उनके बहुविषयक ज्ञान की वृद्धि होती है क्योंकि उनके पाठों के विषय-वस्तु में पर्याप्त वैविध्य रहता है। संस्कृत के अध्ययन में शब्द भण्डार की वृद्धि पर और भी अधिक ध्यान देना चाहिए।

शब्दकोष का प्रयोग—शब्द-भण्डार की वृद्धि का दूसरा माध्यम शब्दकोष का प्रयोग हैं। जिन शब्दों का अर्थ बालकों को ज्ञात न हो उनके लिए उन्हें शब्द-कोष के प्रयोग के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए तथा उन्हें शब्द-कोष के प्रयोग में विधिवत प्रशिक्षित भी करना चाहिए।

अभ्यासार्थ-प्रश्न

१. पठनारम्भ योग्यता क्या है ? उसके लिए किन-किन बातों पर ध्यान रखना चाहिए—स्पष्ट कीजिए।

१. प्रारम्भिक पठन की शिक्षण विधियाँ कौन-कौन सी हैं—उनका संक्षिप्त विवरण दीजिए।

३. पठन कितने प्रकार के होते हैं तथा उनमें क्या अन्तर होता है।—उल्लेख कीजिए।

४. पठन के दोष कौन-कौन से हैं ?

५. मौन पठन के अभ्यास में आप किन-किन बातों पर ध्यान देगें और क्यों ?

१०

गद्य-शिक्षण

संस्कृत गद्य की महत्ता

संस्कृत भारत की मूल भाषा रही है जिसे देववाणी के नाम से भी अभिहित किया गया है। वेद इस भाषा के प्राचीनतम ग्रंथ हैं। उन्हें अपौरुषेय कहा गया है क्योंकि वे अपौरुषेय ज्ञान के प्रतीक हैं। संस्कृत भाषा का अस्तित्त्व ३५०० ईस्वी पूर्व का माना गया है तथा उसकी गणना संसार की प्राचीनतम भाषाओं में है। विश्व की प्राचीनतम भाषाएँ तीन हैं—संस्कृत, ग्रीक और लैटिन। इन तीनों का उद्भव बोलचाल की भाषाओं के रूप में हुआ था। कालान्तर में उनके शब्दों को सुस्थिर नियमों में निबद्ध कर उन्हें क्रमशः उपर्युक्त भाषाओं का नाम दिया गया।

संस्कृत साहित्य विश्व के प्राचीन साहित्यों में सर्वाधिक समृद्ध है। इसमें दो मत नहीं हैं। साहित्य को मूलतः दो भेदों में विभक्त किया गया है—१. गद्य, २. पद्य। इन दोनों ही विधाओं में संस्कृत की कृतियाँ अनूठी हैं। संस्कृत वाङ्मय में गद्य का प्रयोग वैदिक काल से ही मिलता है। वेदों में गद्य का प्रयोग कम हुआ है किन्तु उपनिषदों में गद्य का ही प्राचुर्य है। वस्तुतः इस समय से

ही संस्कृत गद्य की निर्बाध धारा निरन्तर गतिशील रही है। यद्यपि साहित्य में पद्य की महत्ता भी निर्विवाद है तथापि उसकी कसौटी गद्य को ही माना गया है, जैसा कि—'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति' की उक्ति से स्पष्ट है।

थोड़े से शब्दों में अधिक कहने की क्षमता के लिए प्रायः अंग्रेजी गद्य की प्रशंसा की जाती है। किन्तु इस दृष्टि से संस्कृत गद्य अंग्रेजी को भी पीछे छोड़ गया है। संस्कृत गद्य की सामासिक शैली का चमत्कार दर्शनीय है। गहनतम तथा दीर्घकाय अभिव्यक्तियों की जो क्षमता संस्कृत की सामासिक शैली में मिलती है वह अंग्रेजी में भी दुर्लभ है।

संस्कृत गद्य संस्कृति, इतिहास, राजनीति तथा अध्यात्म आदि अनेकानेक विषयों की विपुल वैचारिक सम्पदा का आगार है। दण्डी, सुबन्धु तथा बाण की गणना संस्कृत गद्य के शीर्षस्थ प्रणेताओं में है। दण्डी रचित 'दशकुमार चरित', सुबन्धु रचित 'वासवदत्ता', बाणभट्ट रचित 'हर्ष-चरित' तथा 'कादम्बरी' संस्कृत गद्य की शीर्ष कोटि की रचनाएँ हैं। उनके बाद के गद्यकारों में मेरु-तुङ्गाचार्य, राजशेखर, बल्लाल सेन आदि प्रसिद्ध हैं। इन लेखकों की लेखनी से गद्य की जो धारा प्रवाहित हुई वह आज भी गतिमान है। भारतीय जीवन, उसके विचारों, मान्यताओं, आदर्शों तथा समूचे देश को ऐक्यबद्ध करनेवाली संस्कृति का जो प्रामाणिक कोष संस्कृत साहित्य तथा मुख्यतः उसके गद्य में सुरक्षित है वह विश्व की अन्य जातियों के साहित्य की एक दुर्लभ वस्तु है। इस प्रकार संस्कृत गद्य अत्यन्त समृद्ध और वैभवशाली रहा है तथा इस देश के निवासियों को अपने पूर्वजों से उत्तराधिकार में मिला है। अतः उसका पठन-पाठन हमारे लिए आवश्यक ही नहीं अपितु अत्यन्त लाभदायक भी है।

गद्य-शिक्षण के उद्देश्य

इस बात की चर्चा पहले हो चुकी है कि संस्कृत का सम्पूर्ण पाठ्यक्रम आज तीन स्तरों में विभक्त है—प्रारम्भिक स्तर, माध्यमिक स्तर तथा उच्च स्तर। प्रारम्भिक स्तर में कक्षा ६, ७ और ८ का स्थान है, मध्य में कक्षा ९, १०, ११ और १२ सम्मिलित है तथा उच्च स्तर में स्नातक कक्षाओं की गणना होती है। अस्तु, प्रत्येक स्तर पर छात्रों की क्षमता तथा उनके विकास एवं वयके अनुसार गद्य-शिक्षण के उद्देश्य भी भिन्न-भिन्न हैं। इन उद्देश्यों का विवरण इस प्रकार है—

प्रारम्भिक स्तर (अर्थात् कक्षा ६ से कक्षा ८ तक)

१. शब्दों तथा वाक्यों के शुद्धोच्चारण पूर्वक पठन का अभ्यास।

२. नए शब्दों के ज्ञान द्वारा शब्दकोष की वृद्धि।

३. संस्कृत भाषा से सामान्य परिचय प्राप्त कराना।
४. पाठ्यवस्तु के भावों एवं विचारों के ग्रहण की क्षमता उत्पन्न करना।
५. चरित्र-प्रधान कहानियों के अध्ययन के माध्यम से चारित्रिक विकास।
६. संस्कृत भाषा के प्रति रुचि उत्पन्न करना।
६. छोटे-छोटे सरल वाक्यों में भावाभिव्यक्ति का अभ्यास कराना।

मध्य स्तर (अर्थात् कक्षा ९ से १२ तक)

१. शब्द एवं सूक्ति-भण्डार की वृद्धि करना।
२. पाठ्यवस्तु के आधार पर चारित्रिक विकास की प्रेरणा देना।
३. विभिन्न गद्य-शैलियों से परिचय।
४. कल्पना और तर्कशक्ति का विकास।
५. लेखक के भावानुसार प्रभावपूर्ण पठन का अभ्यास।
६. वयके अनुसार पाठ्य वस्तु की समीक्षा की क्षमता उत्पन्न करना।
७. विविध विषयों के ज्ञान द्वारा बालकों के सामान्य ज्ञान का विस्तार।
८. संस्कृत भाषा के प्रति रुचि का विकास करना।
९. संस्कृत गद्य में भावाभिव्यक्ति की क्षमता विकसित करना।

उच्च स्तर (स्नातक कक्षाएँ)

१. उच्च कोटि की गद्य-रचनाओं के अध्ययन और मनन द्वारा आनन्द की प्राप्ति।
२. कल्पना, तर्क और समीक्षा-शक्ति का उच्च स्तरीय विकास करना।
३. संस्कृत में भावाभिव्यक्ति का सुदृढ़ अभ्यास।
४. संस्कृत गद्य की विभिन्न शैलियों का परिपुष्ट ज्ञान।
५. स्वाध्याय द्वारा साहित्य के गहन अध्ययन के प्रति रुचि उत्पन्न करना।
६. साहित्याध्ययन के माध्यम से उच्चकोटि के चारित्रिक विकास की प्रेरणा देना।

गद्य-शिक्षण के सोपान

किसी भाषा के विभिन्न अवयवों अथवा उसकी विधाओं के अध्यापन में कतिपय सुनिश्चित सोपानों के अनुसार चलना पड़ता है। उसके साथ ही पाठों को सरल से कठिन के क्रम में प्रस्तुत करना उपयुक्त पड़ता है। गद्य-अध्यापन में जिन सोपानों का अनुसरण अपेक्षित होता है वे हैं—

१. **सामान्य प्रारम्भिक बातें**—यथा विद्यालय का नाम दिनांक, कक्षा, वर्ग, विषय, अध्यापनावधि (अर्थात् पाठ के लिए निर्धारित समय) आदि।

२. सामान्य उद्देश्य—ये उद्देश्य सम्पूर्ण विषय—क्षेत्र से सम्बन्धित होते हैं। उदाहरणार्थ—शब्दकोष की वृद्धि एक ऐसा उद्देश्य है जिसकी न्यूनाधिक पूर्ति गद्य, पद्य, द्रुतपाठ आदि भाषा के किसी भी पाठ से होती रहती है। अतः वह गद्य पर भी समान रूप से व्याप्त है।

३. विशिष्टोद्देश्य—अर्थात् वह उद्देश्य जिसकी पूर्ति उस पाठ की अपनी ऐकांतिक देन होती है और जिसकी पूर्ति उस पाठ विशेष से ही संभव होती है।

४. सहायक सामग्री—चित्र, मूर्ति आदि वे वस्तुएँ जिनसे पाठ के अध्यापन में सहायता ली जाती है।

५. पूर्वज्ञान—यदि छात्र पाठ्य विषय से संबंधित कोई पूर्व जानकारी रखते हों तो उसका उल्लेख जिससे कि प्रस्तावना में उसका उपयोग करके उन्हें सीधे पाठ पर लाया जा सके। इससे समय की बचत होती है, लम्बी प्रस्तावना नहीं देनी पड़ती तथा पाठ में पर्याप्त रोचकता भी रहती है।

६. प्रस्तावना—प्रस्तावना रुचिकर ढंग से पाठ पर आने का उपक्रम है। अस्तु, कभी यह कार्य बालक को पाठ विषयक पूर्वजानकारी की सहायता से किया जाता है कभी प्रश्नों द्वारा, कभी विषय-वस्तु को सामान्य पृष्ठभूमि प्रस्तुत करते हुए।

७. उद्देश्य-कथन—प्रत्येक पाठ की एक अपनी देन होती है। कोई पाठ विशुद्ध ज्ञानात्मक अथवा सूचनात्मक होता है तो कोई चारित्रिक विकास की प्रेरणा देने में सक्षम होता है। अतः पाठ विषयक ऐसे उद्देश्य का कथन भी आवश्यक होता है क्योंकि अध्यापन में उससे संभावित इस उपलब्धि पर दृष्टि रखना आवश्यक होता है।

८. पाठोपस्थापन—इसमें सर्वप्रथम तो इस बात का उल्लेख करना चाहिए कि पाठ एक अन्विति में होगा अथवा एकाधिक में। पाठ जितनी अन्वितियों में प्रस्तुत होगा उसका स्पष्ट उल्लेख कर देना चाहिए।

९. आदर्श वाचन—अध्यापक द्वारा।

१०. काठिन्य-निवारण

११. अनुकरण पाठ—अध्यापक द्वारा प्रस्तुत आदर्श पर, छात्रों द्वारा।

१२. बोध-परीक्षा

१३. विस्तृत व्याख्या

१४. मौनवाचन—छात्रों द्वारा

१५. **बोध-परीक्षा**—मौन रूप में पठित अंश पर कतिपय प्रश्नों द्वारा ।

१६. **सस्वर वाचन**—शिक्षक अथवा कतिपय कुशल छात्रों द्वारा ।

१७. **श्यामपट्ट-कार्य**—शब्दोच्चारण से लेकर शब्दार्थ तक की कठिनाइयों के निवारण में श्यामपट्ट का प्रयोग ।

१८. **पुनरावृत्ति**—सम्पूर्ण पाठ्यवस्तु के मूल अंशों पर प्रश्न तथा पाठ के सामान्य एवं विशेष उद्देश्यों पर आश्रित प्रश्न ।

गृह-कार्य—अर्जित ज्ञान को परिपुष्ट करनेवाले प्रश्न जिन्हें छात्र घर से करके ले आयेंगे ।

शब्द-व्याख्या की विधियाँ

विस्तृत व्याख्या के अन्तर्गत अन्य बातों के साथ शब्दों की व्याख्या भी सम्मिलित है । इस व्याख्या में शब्द का सामान्य अर्थ, स्थलविशेष पर उसके अभिप्रेत अथवा प्रस्तुत अर्थ आदि पर सम्यक् रूप से प्रकाश डालना चाहिए । इन सब में शब्दार्थ की महत्ता विशिष्ट होती है क्योंकि काठिन्य की दृष्टि से पाठक का ऐसे शब्दों से पग-पग पर साक्षात्कार होता रहता है जिनके काठिन्य-निवारण के बिना पाठ्य-वस्तु का सम्यक बोध असंभव रहता है । शब्द-व्याख्या की अनेक विधियाँ हैं । अध्यापक को उन सभी का ज्ञान होना चाहिए जिससे कि वह विविध प्रसंगों में परिस्थितियों की माँग के अनुसार इनमें से सर्वाधिक उपयुक्त किसी एक अथवा एकाधिक विधियों के प्रयोग द्वारा छात्रों को शब्दगत काठिन्य से मुक्ति दिला सके । वे विधियाँ ये हैं—

१ **वस्तु-प्रदर्शन द्वारा**—यहाँ वस्तु से तात्पर्य मूल वस्तु से है । जहाँ किसी प्रसंग में निरापद रूप में किसी मूल वस्तु का दिखाना संभव हो वहाँ उसे मूल रूप में दिखाना ही उचित होता है, उसके चित्र आदि का प्रदर्शन नहीं । किन्तु जहाँ मूल वस्तु का प्रदर्शन निरापद न हो वहाँ उनकी प्रतिकृति अथवा चित्रादि का प्रयोग करना उचित होता है; यथा 'सिंह' पर लिखे पाठ में जीवित सिंह का प्रदर्शन न तो साध्य हो सकता है न ही निरापद ।

२. **चित्र-प्रदर्शन द्वारा**—दिवंगत महापुरुषों, बड़े-बड़े यंत्रों आदि का ज्ञान उनके चित्रों से कराया जा सकता है ।

३ **मानचित्रों द्वारा**—मानचित्रों का प्रयोग प्रसिद्ध ऐतिहासिक, भौगोलिक अथवा सांस्कृतिक नगरों, स्थानों आदि का बोध कराने में सहायक होता है ।

४. **प्रतिकृति-प्रदर्शन द्वारा**—नदियों, पहाड़ों, झरनों तथा अन्य प्राकृतिक

दृश्यों आदि का बोध उनकी प्रतिकृतियों के प्रदर्शन से अधिक सुगम हो जाता है। मूर्ति की गणना भी प्रतिकृति में ही होती है।

५. **रेखाचित्र द्वारा**--विभिन्न उपकरणों आदि की रूपरेखा का बोध रेखाचित्रों द्वारा अधिक सुबोध और उपयुक्त सिद्ध होता है।

६. **प्रश्न द्वारा**—खण्डान्वय विधि के प्रयोग में अर्थबोध के लिए प्रश्नों का आश्रय लेना अधिक उपयोगी होता है।

७. **तुलना द्वारा**—इस विधि में दो वस्तुओं के साम्य और वैपम्य—दोनों पर विचार करने की बात सम्मिलित रहती है। इस प्रकार दोनों के साम्य-वैषम्य का निदर्शन करते हुए अभीष्ट शब्द अथवा वाक्यांश का अर्थ स्पष्ट किया जाता है। यथा--यदि छात्रों को 'मलिन' शब्द का अर्थ समझाना हुआ और वे 'स्वच्छ' शब्द के अर्थ से पूर्व-परिचित हैं तो तुलना विधि पर आधारित एक वाक्य की रचना इस प्रकार होगी--

'कुएँ का जल स्वच्छ होता है किन्तु गड्ढे का मलिन।' इस प्रकार वे दोनों की तुलना कर 'मलिन' का अर्थ निकाल लेंगे।

८, **उदाहरण द्वारा**—राष्ट्रभक्ति, त्याग, बलिदान तथा सत्यनिष्ठा आदि जैसे भावबोधात्मक शब्दों का अर्थ राणा प्रताप अथवा शिवाजी, भर्तृहरि, चन्द्रशेखर आजाद, महात्मा गांधी अथवा सत्य हरिश्चन्द्र के जीवन के उदाहरणों से समझाया जा सकता है।

९. **अन्तःकथा द्वारा**--भाषा में ऐसे अनेक प्रयोग मिलते हैं जिनकी पृष्ठभूमि में कोई न कोई पूर्वकथा रहती है जिसके बोध के विना भाव स्पष्ट नहीं होता। जैसे--'वे अपने युग के शिवाजी थे।' इस वाक्य में जव तक शिवाजी के गुणों का संक्षिप्त निदर्शन न कर दिया जाय तब तक वाक्य का अभीष्ट अर्थ स्पष्ट नहीं होता।

१०. **अर्थकथन द्वारा**--पठितांश का (शब्दार्थ सहित) छात्रों को सीधा अर्थ अथवा भावार्थ बतलाने की क्रिया अर्थकथन है।

११. **व्याख्या द्वारा**--जहाँ किसी शब्द अथवा भाव के लिए वस्तु, चित्र अथवा प्रतिकृति आदि का प्रदर्शन संभव नहीं होता वहाँ उसके अर्थबोध के लिए भाषा ही एक मात्र साधन रह जाती है। ऐसी पाठ्यवस्तु में पारिभाषिक शब्दों के साथ भाववाचक संज्ञाओं तथा गुणवाचक विशेषणों का स्थान विशेष रहता है। ऐसे शब्दों की व्याख्या एकाधिक वाक्यों में करनी पड़ती है। तथा उपर्युक्त उदाहरणों द्वारा मूलभाव की पुष्टि भी करनी पड़ती है।

१२. वाक्य-प्रयोग द्वारा—कठिन शब्दों का सरलतम वाक्यों में प्रयोगकर उनका अर्थ समझाना।

१३. खण्डविधि द्वारा—इसमें संधि-विच्छेद और समास विग्रह—ये दोनों ही विधियाँ आती हैं। अनेक वार इस विधि के प्रयोग से समस्त पदों के अव-गुण्ठन खुल जाते हैं और छात्रों को शब्दों का पृथक-पृथक तथा उनके सम्मिलित रूप (समस्त पद) का अर्थबोध सुगमतापूर्वक हो जाता है।

१४. व्युत्पत्ति द्वारा—उपसर्ग, प्रत्यय, विभक्ति आदि से बने शब्दों का मूल बताकर तथा उनमें लगी विभक्तियों आदि का स्वरूप स्पष्ट कर उनका अर्थ समझाना।

१५ पर्याय कथन द्वारा—यथा–चन्द्रमा के लिए सुधाकर, मयंक, निशानाथ आदि शब्द बतलाना।

१६. विलोम द्वारा—प्रकाश के लिए अंधकार, सुखद के लिए दुःखद, हर्ष के लिए विषाद, मंगल के लिए अमंगल आदि विपरीतार्थक शब्द बताकर मूल शब्द के अर्थ की प्रतीति यह कहते हुए कराना कि अभीष्ट शब्द का अर्थ ठीक इसके अर्थ के विपरीत है।

१७ अभिनय द्वारा—अनेक शब्दों का अर्थ जितनी सरलता से अभिनय द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है उतना अन्यथा नहीं; यथा—पठति, तिष्ठति, उत्तिष्ठ आदि। किन्तु इन अभिनीत होने वाले शब्दों के संबध में अध्यापक को इस बात पर ध्यान रखना चाहिए कि वह कोई ऐसी क्रिया का प्रदर्शन न करें जिससे कि वह स्वयं उपहास्य बन जाय; यथा—'अट्टहास' शब्द की व्याख्या अट्टहास के प्रदर्शन से करना कदापि समाचीन नहीं कहा जा सकता।

विशेष—व्याख्या-कार्य में अध्यापक को निम्न बातों पर विशेष रुप से ध्यान रखना चाहिए—

१. विभिन्न कक्षाओं में इन विधियों की उपयुक्तता-अनुपयुक्तता पर विचार करके ही उनका प्रयोग करना चाहिए। जो शब्द जिस विधि से अधिक सरल और साध्य हो उसके लिए उसी विधि का प्रयोग करना चाहिए। यह पूर्णतया अध्यापक के अपने विवेक पर निर्भर करता है।

२. व्याख्या के समय एकवचन शब्द के बहुवचन रुप तथा बहुवचन शब्द के एक वचन रूप को भी स्पष्ट करते चलना चाहिए।

३. खण्ड-विधि व्याकरण पर आश्रित विधि है। जिन कक्षाओं में संधि और समास का ज्ञान सम्यक् रूप से न कराया गया हो अथवा पाठ्य-

क्रम में न हो वहाँ इस विधि के प्रयोग से कोई लाभ नहीं होगा। इसके विपरीत छात्रों के भ्रमित होने की संभावना ही अधिक रहती है।

४. वाक्यों अथवा शब्दों के सामान्य अर्थ के साथ उनके अप्रस्तुत अथवा लाक्षणिक अर्थ को भी स्पष्ट करते चलना उचित होता है।

५. बालकों की आयु, उनके मानसिक विकास तथा उनकी भाषागत उपलब्धियों को दृष्टि में रखकर जिन कक्षाओं में जिन विधियों का उपयोग अधिक लाभप्रद प्रतीत हो उनमें उन्हीं विधियों का प्रयोग करना चाहिए।

६. जहाँ किसी एक शब्द अथवा वाक्यांश की व्याख्या एकाधिक विधियों से संभव हो वहाँ उनमें से सर्वाधिक सरल तथा रोचक विधि का आश्रय लेना ही अध्यापक की कार्य-कुशलता का द्योतक होता है।

७. गृहकार्य में शब्दार्थ तथा शब्द-प्रयोगों पर भी अभ्यास देना चाहिए।

गद्य-पाठ-योजना

[प्रथम]

वाराणसी

अनुगङ्गं विराजमाना वाराणसी भारतवर्षस्य प्राचीना नगरी अस्ति। अत्र भागीरथ्याः तटे राजभिः निर्मिताः घट्टा अपूर्वां शोभां जनयन्ति। नद्याः तटे घट्टानामीदृशी सुविस्तीर्णा मनोहरा च परम्परा संसारे अन्यत्र कुत्रापि सुलभा नास्ति। एभिः घट्टैः अर्धचन्द्राकारा काशी सर्वेषाम् आगन्तुकानां मनांसि मोहयति। दशाश्वमेधघट्टे प्रतिदिनं सन्ध्यायां कीर्तनं कथादिकाश्च भवन्ति। अत्र वर्तमानेषु मन्दिरेषु भगवतः विश्वनाथस्य प्रसिद्धं मन्दिरं विद्यते। बहुमूल्य स्वर्णमण्डिते मन्दिरे विश्वेश्वरविश्वनाथमूर्तिः प्रस्थापिता। दूरस्थानात् यात्रिणः प्रतिदिनमस्याः शिवमूर्तेः दर्शनाय आगच्छन्ति।

विद्यालय का नाम........................ दिनाङ्क......................

अध्यापक का नाम........................ कक्षा—नवम

विषय—संस्कृत गद्य अवधि—४० मिनट

शीर्षक—वाराणसी

सामान्य उद्देश्य—१. पाठगत ध्वनियों, शब्दों एवं वाक्यों के शुद्ध उच्चारण की क्षमता विकसित करना।

२. पाठ्यवस्तु के भावों एवं विचारों को ग्रहण करने की क्षमता उत्पन्न करना।

३. संस्कृत शब्द एवं सूक्तिभण्डार की वृद्धि करना।

४. संस्कृत में प्रचलित गद्य-शैलियों से परिचय कराना।

५. संस्कृत भाषा के प्रति रुचि एवं अनुराग उत्पन्न करना तथा लेखक के भावानुसार प्रभावपूर्ण पठन का अभ्यास करना।

६. पाठगत आदर्श से प्रेरणा लेना।

७. कल्पना और तर्कशक्ति का विकास करना।

८. विविध विषयों के ज्ञान द्वारा बालकों के सामान्य ज्ञान का विस्तार करना।

९. संस्कृत गद्य में भावाभिव्यक्ति की क्षमता उत्पन्न करना।

विशिष्ट उद्देश्य— छात्रों को प्रसिद्ध तीर्थस्थान वाराणसी के सांस्कृतिक महत्त्व से परिचित कराना।

सहायक सामग्री— चित्र तथा लपेट श्यामपट्ट पर निर्मित चार्ट।

पूर्व-ज्ञान— छात्रों को संस्कृत भाषा एवं व्याकरण का सामान्य ज्ञान है तथा वाराणसी की तीर्थगत विशेषताओं से किंचित् परिचित हैं।

प्रस्तावना— १. भारतवर्षस्य का सांस्कृतिक राजधानी विद्यते ?

२. भगवतः विश्वनाथस्य प्रसिद्धं मन्दिरं कुत्र वर्तते ?

३. अस्य पार्श्वे का नदी प्रवहति ?

उद्देश्य-कथन— आज हम एक प्रसिद्ध तीर्थ स्थान के रूप में वाराणसी की महत्ता के सम्बन्ध में परिचय प्राप्त करेंगे।

पाठोपस्थापना— पाठ एक ही अन्विति में पढ़ाया जायगा।

आदर्श वाचन— शिक्षक उचित आरोहावरोह-क्रम से गद्यांश का वाचन करेगा।

काठिन्य-निवारण— निम्नलिखित पदों का उच्चारण तथा सन्धि-विच्छेद आदि छात्रों द्वारा कराया जायगा।

(१) घट्टानामीदृशी (२) कुत्रापि (३) दशाश्वमेध (४) विश्वेश्वर।

अनुकरण वाचन— कतिपय छात्रों द्वारा गद्य का वाचन कराया जायगा।

बोध-परीक्षा— पठितांश के ज्ञान की परीक्षा कतिपय छात्रों से प्रश्न द्वारा की जायगी। जहाँ छात्र अर्थ न कर सकेंगे वहाँ शिक्षक उनकी सहायता करेगा।

(१) वाराणसी नगरं किमर्थं प्रसिद्धमस्ति ?

(२) तत्र कानि दर्शनीयानि स्थाननि सन्ति ?

(३) गङ्गातटे सायङ्काले केषां कथा कीर्तनादिकं च भवति।

(४) दशाश्वमेधघट्टस्य किं महत्त्वमस्ति ?

विस्तृत व्याख्या— अनुगङ्गम्—गङ्गामनु—अव्ययीभाव

प्रतिदिनम्—दिनं दिनम् प्रति—अव्ययीभाव

मनांसि—मनः शब्द नपु० लि० है। इसके बहु० का यह रूप है।

मौन वाचन— छात्रों द्वारा।

बोध-परीक्षा— (१) जनाः किमर्थं वाराणसीं गच्छन्ति ?

(२) विश्वनाथमन्दिरं कीदृशमस्ति ?

सस्वर वाचन— शिक्षक अथवा—कतिपय कुशल छात्रों द्वारा।

श्यामपट्ट-कार्य— काठिन्य-निवारण-तथा विंस्तृत व्याख्या का कार्य श्यामपट्ट पर होगा।

पुनरावृत्ति— (क) पाठ के महत्वपूर्ण अंश पर प्रश्न किये जायेगें।

(१) काश्यां गङ्गाया, कीदृशं स्वरूपमस्ति ?

(२) विश्वनाथयन्दिरस्य शिखरं केन मण्डितमस्ति।

(ख) रिक्त स्थानों की पूर्त्ति करो।

अनुगङ्गं..............भारतवर्षस्य नगरी अस्ति।

भागीरथ्याः तटे..........अपूर्वां शोभां जनयन्ति।

दशाश्वमेघ घट्टे सन्ध्यायां..............भवति।

(ग) निम्नलिखित शब्दों का प्रयोग अपने वाक्य में करो—
राजभिः, कुत्रापि, घट्टाः, दर्शनाय ।

(घ) निम्नलिखित शब्दों का अर्थ बनायें—
भागीरथ्याः, जयनयन्ति, विश्वेश्वर ।

गृह-कार्य— पूरे गद्यांश का अर्थ लिखकर लायें ।

गद्य-पाठ-योजना

[द्वितीय]

वसन्त सुषमा

अहो प्रकामं रमणीयता, नयन-सुभगस्य कुसुमाकर-वसन्तस्य, सुरभि-शीतलः पवनः मन्दं मन्दं प्रवहति । विविधैः पुष्पैर्विभूषिता पादपङ्क्तयः वनानामुपवनानां च सुषमाम् अतितराम् वर्धयन्ति । अधुना कुसुमैरलंकृता वसुमती रक्तांशुका मूर्तिमती वासन्तीव आभाति । कमनीयैः कर्णिकार-कुरवकादिप्रसूनैः सुरभितः निखिलोऽपि वनप्रदेशः नितरां नवीनां शोभाम् आदधाति । सहकारशाखासु कूजतां कोकिलानां श्रुतिमधुरेण कूजितेन प्रमोदते जाननां चेतः । पुष्पितासु लतासु मधु-लोलुपानाम् अलीनां गुञ्जनम्, आह्लादयति जनानां मनांसि ।

सकलजनहृदयाह्लादकः अयम् ऋतुः । समशीतोष्णतया अयम् ऋतुः सर्वेषां मानवानां प्रियोभवति, अस्मिन्नेव ऋतौ तरुलतागुल्मेषु प्रस्फुटिता, नवनवा कोमल-किसलयाः तेषु नूतनं जीवनमायातमिति च निर्दिशन्ति, आम्रविटपेषु सुशोभितानां मञ्जुलमञ्जरीणां सुदूरं प्रसृतं सौरभं जनान् मदयति विपुलं नवरसालफलागमं च सूचयति । परितः सस्य समन्वितानि क्षेत्राणि विलोक्य मोदन्ते कृषीवलाः ।

विद्यालय का नाम.............................. दिनाङ्क.........................

अध्यापक का नाम.............................. कक्षा—नवम

विषय—संस्कृत गद्य अवधि—४० मिनट

शीर्षक—वसन्त सुषमा

सामान्य उद्देश्य—१. संस्कृत गद्य के वाचन की क्षमता उत्पन्न करना ।
२. छात्रों के शब्द एवं सूक्तिभण्डार में वृद्धि करना ।
३. पाठगत-भावों एवं विचारों को ग्रहण करने की क्षमता उत्पन्न करना ।

४. संस्कृत में प्रचलित गद्य-शैलियों से परिचित कराना।

५. संस्कृत भाषा के प्रति रुचि एवं अनुराग जागत करना। तथा लेखक के भावानुसार प्रभावपूर्ण शैली में पठन का अभ्यास करना।

६. पाठगत आदर्श से प्रेरणा लेना।

७. कल्पना एवं तर्कशक्ति का विकास करना।

८. संस्कृत गद्य में भावाभिव्यक्ति की क्षमता उत्पन्न करना।

विशिष्ट उद्देश्य— छात्रों को वसन्त-ऋतु की विशेषताओं से परिचय कराते हुए प्रकृति-प्रेम उत्पन्न करना।

सहायक सामग्री— चित्र एवं कक्षाशिक्षण के सामान्य साधन।

पूर्व-ज्ञान— छात्रों को संस्कृत भाषा एवं व्याकरण का सामान्य ज्ञान हैं तथा वे वसन्त-ऋतु की सामान्य विशेषताओं से परिचित हैं।

प्रस्तावना— भारतवर्षे के प्रमुखाः ऋतवः सन्ति ?
तेषु कः ऋतुराज इति कथ्यते ?

उद्देश्यकथन— आज हम वसन्त ऋतु की विशेषताओं के सम्बन्ध में अध्ययन करेंगे।

पाठोपस्थापना— पाठ दो अन्वितियों में पढ़ाया जायगा।
'प्रथमान्विति-अहो.........जनानां मनांषि।'

आदर्श वाचन— शिक्षक उचित आरोहावरोह-क्रम से गद्यांश का वाचन करेगा।

काठिन्य—निवारण— निम्नलिखित पदों का उच्चारण छात्रों से कराया जायगा तथा सन्धि-विच्छेद पूछा जायगा—

(१) प्रकाम (२) कुसुमाकर (३) पादप पंक्तयः
(४) कुसुमैरलङ्कृता (५) रक्तांशुका (६) वासन्तीव

अनुकरण वाचन— कतिपय छात्रों द्वारा गद्यांश का अनुकरण वाचन कराया जायगा।

बोध-परीक्षा— पठितांश के ज्ञान की परीक्षा कतिपय छात्रों से प्रश्न द्वारा की जायगी।

(१) भारते ऋतूनां कः क्रमः वर्तते ?

(२) बसन्ते प्रकृतिसुषमा कीदृशी भवति ?

(३) कोकिलानां कूजितं कदा श्रूयते ?

विस्तृत व्याख्या—

शब्द	अर्थ	विधि
प्रकाम	अधिक	प्रयोग
	घटोत्क्षेपणात्	अंसौ प्रकामं विनतौ ।
पादपपंक्तयः	वृक्षों की शृङ्खला	समास
कुसुमाकर	बसन्त	कुसुम + आकर
वर्धयन्ति	बढ़ाते हैं	वृध् णिच् लट् प्र०पु० बहु०
रक्तांशुका	लाल वस्त्रवाली	रक्त + अंशुका
सहकार	आम	सहकार वृक्षः फलैः समृद्धः अस्ति ।
अली	भ्रमर	व्याख्या

द्वितीयान्विति

पाठ्यांश— 'सकलजन हृदयाह्लादकः·········कृषीवलाः ।'

आदर्श वाचन— अध्यापक द्वितीयान्वित का आदर्श वाचन प्रस्तुत करेगा।

काठिन्य—निवारण— निम्नलिखित पदों का उच्चारण तथा सन्धि-विच्छेद आदि छात्रों से कराया जायगा ।

(१) सकलजनहृदयाह्लादकः (२) समशीतोष्णतया
(३) तरुलतागुल्मेषु (४) प्रसृतम् ।

अनुकरण वाचन— कयिपय छात्रों द्वारा गद्य का वाचन कराया जायगा ।

बोध-परीक्षा— पठितांश के ज्ञान की परीक्षा कतिपय छात्रों से प्रश्न द्वारा की जायगी ।

(१) कदा प्रकृतौ नवीनपरिवर्तनं भवति ?

(२) कः कालः सकलजन हृदयाह्लादकः ?

विस्तृत व्याख्या— द्वितीयान्विति के पाठ के कठिन शब्दों की व्याख्या छात्रों की सहायता से की जायगी ।

शब्द	अर्थ	विधि
हृदयाह्लादकः	हृदय को आनन्दित करनेवाला	हृदय + आह्लादकः
समशीतोष्णतया	न अधिक ठंढा न अधिक गरम	समास
अस्मिन्नेव	इसी में	अस्मिन् + एव
प्रसृतं	अधिक	प्रसृतं स्वादयुतं फलमस्ति।
विलोक्य	देखकर	वि + लुक् + ल्यप्

मौन वाचन— छात्रों द्वारा।

बोध-परीक्षा— (१) वसन्तस्य किं वैशिष्ट्यमस्ति ?
(२) जनाः किमर्थं मोदन्ते ?
(३) कस्मिन ऋतौ आम्रमञ्जरी जनान् मदयति ?

सस्वर वाचन— शिक्षक अथवा कतिपय कुशल छात्रों द्वारा।

श्यामपट्ट-कार्य— उच्चारण से लेकर कठिन शब्दों की व्याख्या तक के कार्य में श्यामपट्ट का प्रयोग होगा।

पुनरावृत्ति— (क) पाठ के महत्त्वपूर्ण अंश पर प्रश्न किये जायेंगे।
(१) बसन्त ऋतौ क्षेत्राणां कीदृशी शोभा भवति ?
(२) बसन्त ऋतौ केषां फलपुष्पाणामधिकता भवति।
(३) जनाः कां शोभां विलोक्य मोदन्ते ?

(ख) रिक्त स्थानों की पूर्ति करो—
शीतः पवनः................वहति
वनप्रदेशः................आदधाति
अयम्................ऋतुः
क्षेत्राणि विलोक्य................

(ग) निम्नलिखित शब्दों का प्रयोग अपने वाक्य में करो।
प्रसून, अली, सहकार, मदयति, विलोक्य।

(घ) निम्नलिखित शब्दों का अर्थ बताओ—
आह्लादयति, रक्तांशुका, आम्रविटपाः।

गृहकार्य— पूरे गद्यांश का अर्थ लिखकर लायें।

अभ्यासार्थ प्रश्न

१. 'संस्कृत गद्य की महत्ता का विवेचन कीजिए।

२. गद्य–शिक्षण के उद्देश्य क्या-क्या हैं? संस्कृत-शिक्षा के प्रारम्भिक स्तर के उद्देश्यों का तर्कपूर्ण विवरण प्रस्तुत कीजिए।

३. संस्कृत-शिक्षण के माध्यमिक तथा उच्चस्तरीय उद्देश्यों की परस्पर तुलना करते हुए दोनों का अन्तर स्पष्ट कीजिए।

४. गद्य-शिक्षण के सोपानों की महत्ता स्पष्ट कीजिए।

५. गद्य के पाठ में व्याख्या का महत्त्व निरुपित करते हुए उसकी विभिन्न विधियों का संक्षिप्त निदर्शन कीजिए।

६. शब्दाध्यापन की निम्न विधियों में से किन्हीं तीन की उदाहरण सहित व्याख्या कीजिए—

(क) प्रतिकृति-प्रदर्शन

(ख) अन्तःकथा

(ग) व्याख्या

(घ) खण्ड-विधि

(ङ) अभिनय

६. शब्दाध्यापन में जो सावधानियाँ अपेक्षित होती हैं उनका उल्लेख कीजिए तथा यह भी स्पष्ट कीजिए कि उन पर ध्यान न रखने से क्या क्षति होती है।

११

कहानी-शिक्षण

कहानी क्या है ?

कहानी साहित्य की एक अत्यन्त लोकप्रिय विधा है। अपने उद्भवकाल से लेकर आज तक उसके रूप में निरन्तर परिवर्तन होता आ रहा है। इस देश में कहानी का मूल स्रोत संस्कृतभाषा और उसका साहित्य है। संस्कृत साहित्य में कहानी के दो रूप मिलते हैं—१. आख्यायिका २. कथा। किन्तु बाद में आचार्य दण्डी ने आख्यायिका और कथा के भेद को कृत्रिम मानकर उसे अस्वीकार कर दिया।

वस्तुतः कहानी को किसी सुनिश्चित तथा अकाट्य परिभाषा में निबद्ध कर पाना कठिन है। इसका कारण उसकी प्रकृति तथा रूपों का वैविध्य तथा उसमें होने वाले परिवर्तन हैं। किन्तु फिर भी अनेक विद्वानों ने उसके स्वरूप-बोध के लिए उसको परिभाषित करने का प्रयास किया है।

कहानियों के प्रति मानव का आकर्षण जन्मजात होता है। अपने शैशव काल से ही अबोध बालक का भी कहानियों में रुचि प्रदर्शित करना इसका प्रमाण है। प्राचीन युग में हमारी कहानियों का उद्देश्य मनोरंजन के साथ समाज को नैतिक तथा आचारिक शिक्षा देना था। अतः उनका झुकाव मुख्यतः उपदेशात्मकता की ओर था किन्तु आज उनका उद्देश्य जीवन की व्याख्या है। अतः आज की कहानियाँ मनोवैज्ञानिक धरातल पर अधिक टिकी हैं। मानव समाज की विभिन्न प्रकार की रुचियों का पोषण करने की दृष्टि से आज की कहानियों के आयाम भी पूर्व की अपेक्षा अधिक विस्तृत हो गए हैं। दार्शनिक, रोमांचकारी, चारित्रिक, सामाजिक आदि अनेक धाराओं में उनका प्रवाह देखा जा सकता है जो कि कथा-साहित्य की समृद्धि का द्योतक है। वर्तमान युग में जितना लेखन और प्रचार-प्रसार कहानियों का हुआ है उतना साहित्य की किसी अन्य विधा का नही हुआ है।

अमरीकी लेखक एडगर एलेन पो ने कहानी की परिभाषा इस प्रकार दी है—

A short story is a narrative short enough to be read in a single sitting, written to make an impression on the reader, excluding all that does not forward that impression complete in itself."

तात्पर्य यह है कि कहानी एक ऐसा लघुवृत्त है जो कि एक ही बैठक अथवा थोड़े ही समय में समाप्त किया जा सके और पाठक को प्रभावित करना उसका साध्य हो। इसके अतिरिक्त यह प्रभाव अपनेमें पूर्ण हो तथा जो कुछ इस प्रभाव की पूर्णता में बाधक हो उसे स्थान न दिया गया हो।

वस्तुतः कहानी सम्पूर्ण जीवन का चित्र अथवा उसकी व्याख्या न होकर उसकी किसी घटना अथवा अंश विशेष का ही चित्रण और निरूपण करती है किन्तु इस ढंग से करती है कि वह अत्यन्त प्रभावशाली होने के साथ ही अपने आप में पूर्ण प्रतीत हो।

कहानी का महत्व

कथा-साहित्य मानव के मनोरंजनपूर्वक कालक्षेप का आदि युग से ही एक प्रमुख साधन रहा है। कथा आज भी प्रचुर मनोरंजन सहित ज्ञानात्मक, नैतिक तथा आचारिक शिक्षा का स्रोत बना हुआ है। हमारे देश में तो उसके इस महत्व को आदिम युग से ही स्वीकार किया जा चुका है। आचार तथा लोक-

व्यवहार की शिक्षा-दीक्षा के लिए उसका प्रयोग उसी समय था। पंचतंत्र, हितोपदेश, वृहत्कथा, वृहत्कथा-मंजरी तथा कथासरित्सागर आदि उस युग की उच्च-कोटि की रचनाएँ हैं तथा उसके बाद 'वैताल पंचविंशतिका' तथा 'सिंहासन द्वात्रिंशतिका' जैसी रचनाएँ भी प्रकाश में आ चुकी थीं। इसीलिए एक साहित्यिक विधा के रूप में कहानियों की शिक्षा भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इतिहास भूगोल, सामान्य विज्ञान तथा गणित जैसे अनेक विषयों की प्रारम्भिक शिक्षा में एक प्रविधि के रूप में भी कहानियों की भूमिका निर्विवाद रहती है। बच्चे कहानियों को अत्यन्त मनोयोग तथा रुचिपूर्वक सुनते हैं। अतः अनेक विषयों की प्रारम्भिक शिक्षा कहानियों के माध्यम से दी जाती है। शिक्षण के एक मान्य प्रविधि के रूप में इनकी उपयोगिता अक्षर-ज्ञान से लेकर अनेक विषयों के प्रारम्भिक शिक्षण तक में है। यद्यपि इनका मूलोद्देश्य मनोरंजन है तथापि ये कल्पना और स्मरणशक्ति के विकास का एक सबल माध्यम होती हैं। अनेक विषयों की शिक्षा कहानी के आवरण में देने का यही औचित्य है। द्रुतपाठ में इसीलिए स्वाध्याय की प्रवृत्ति विकसित करने की दृष्टि से कहानियों का सन्निवेश विशेष रूप से रहता है। प्रत्येक साहित्य में उसकी न जाने कितनी सूक्तियों तथा लोकोक्तियों में भी कहानियों की सत्ता विद्यमान रहती है।

अतः एक अत्यन्त लोकप्रिय साहित्यिक विधा तथा एक मान्य प्रक्रिया—इन दोनों ही रूपों में उसकी महत्ता स्वतः स्पष्ट हो जाती है।

विभिन्न स्तरों पर कहानी का चयन

कहानी का अथवा उसके माध्यम से अन्य विषयों का अध्ययनाध्यापन तभी सफल होता है जब कि इस कार्य के लिए चुनी हुई कहानियों में निम्नांकित विशेषताएँ विद्यमान हों—

१. भिन्न-भिन्न आयु के बालकों के मानसिक विकास के स्तर में भी पर्याप्त भिन्नता होता है तथा उनकी स्तरानुकूल आवश्यकताओं और रुचियों में भी भिन्नता होती है। अतः कहानियों का चुनाव उनके मानसिक विकास तथा स्तर के अनुरूप होना चाहिए। यथा—छोटे बालक अपने वातावरण में उपलब्ध घोड़े, कुत्ते, बैल तथा बिल्ली आदि सुपरिचित जीवों तथा कल्पना को उसकाने वाली परियों आदि की कथाओं में रुचि लेते हैं। इसी प्रकार मध्य तथा उच्च स्तर के छात्रों को अपनी आयु के अनुसार इनसे भिन्न तथा जीवन-जगत की नित्यप्रति की घटनाओं पर आधारित यथार्थवादी कहानियाँ

अधिक रुचिकर लगती हैं। कुल मिलाकर विभिन्न स्तरों के बालकों के वातावरण से सम्बन्धित होनी चाहिए।

२. कहानी रोचक हो, बालक की जिज्ञासा की तृप्ति करती हो तथा पर्याप्त मनोरंजक हो।

३. उसकी भाषा-शैली बोल-चाल की अर्थात सरल तथा पर्याप्त आकर्षक हो।

४. प्रत्येक कहानी उद्देश्पूर्ण हो तथा उसका उद्देश्य किसी न किसी दिशा से बालक का सद्विकास करना हो।

५. किशोरावस्था के बालकों के लिए चारित्रिक विकास को लक्ष्य करके लिखी कहानियों का महत्व निर्विवाद होता है क्योंकि यह उस आयु की माँग होती है।

६. कहानियों में कथोपकथन अथवा वार्तालाप पर्याप्त मात्रा में हो क्योंकि ऐसी कहानियाँ कथावस्तु के प्रति आस्था उत्पन्न करती हैं तथा बालकों के अवधान को एकाग्र रखने में सहायक होती हैं।

७. घटना-प्रधान कहानियाँ बालकों के लिए अधिक रोचक तथा आकर्षक सिद्ध होती हैं। अतः उनसे बालकों की मानसिक सक्रियता, कल्पना और तर्कशक्ति उद्बुद्ध होती है।

८. उच्च स्तर पर सामाजिक, राजनीतिक, ऐतिहासिक, भौगोलिक (पर्यटन आदि की) तथा महापुरुषों की कहानियाँ होनी चाहिए जो कि उनके चरित्र को ऊँचा उठाने में सहायक हों।

९. बालकों को भयभीत करनेवाली तथा उनके मनोबल को तोड़ने अथवा उत्साह भंग करने वाली कहानियों का पाठ्यक्रम में सन्निवेश उचित नहीं होता।

कहानी-शिक्षण के उद्देश्य

१. बालकों की कल्पना, स्मरण और तर्कशक्ति का विकास करना।
२. मनोरंजन सहित बालकों के ज्ञान-क्षितिज का विस्तार करना।
३. बालकों के नैतिक एवं चारित्रिक विकास में योगदान देना।
४. मानव-चरित्र की विशेषाओं का ज्ञान करना।
५. कहानी के माध्यम से बालकों में साहित्य के अध्ययन में रुचि जाग्रत करना।

६. वार्तालाप की कला में प्रशिक्षित कर उन्हें लोक-व्यवहार में निपुण बनाना।

कहानी प्रस्तुत करने वाले अध्यापक के गुण

किसी भी विकसित साहित्य में आज कहानियों की कमी नहीं हैं। वास्तविकता तो यह है कि साहित्य की अन्य विधाओं की अपेक्षा कहीं अधिक रोचक सिद्ध होने के कारण कहानियों की लोकप्रियता सर्वाधिक हैं तथा उनकी रचना भी अधिक मात्रा में हो रही हैं। परन्तु अध्यनाध्यापन में केवल अच्छी कहानियों का चयन ही पर्याप्त नहीं होता। उनकी वास्तविक सफलता अध्यापक द्वारा उनकी मौखिक प्रस्तुति पर निर्भर करती हैं। इस कार्य के लिए अध्यापक में निम्न गुणों का होना आवश्यक रहता है—

१. अध्यापक को सम्पूर्ण कहानी को भली भाँति पढ़कर उसे हृदयंगम कर लेना चाहिए तथा स्वयं कहानी के विषय-वस्तु के साथ एकात्म होकर उसे पूर्ण मनोयोगपूर्वक बच्चों के समक्ष प्रस्तुत करना चाहिए। तभी वह बालकों को भी अपने में लीन कर सकती है।

२. अध्यापक बाल मनोविज्ञान का अच्छा ज्ञाता हो। तभी उसे इस का वास्तविक ज्ञान हो सकता हैं कि कहानी का कौन-सा अंश बालकों के लिए किस सीमा तक आकर्षक और प्रेरणादायक हो सकता हैं तथा किस अंश पर कितना बल देकर उसे प्रस्तुत करना आवश्यक होगा।

३. कहानी बोलचाल की सरतलम तथा मधुर भाषा में प्रस्तुत करने का अभ्यासी हो।

४. अध्यापक स्तरानुकूल भाषा के प्रयोग में सक्षम हो।

५. कहानी सुनाते समय उमें निरन्तर प्रसन्न मुद्रा में रहना चाहिए।

६. कथानक के भावानुसार स्वर-परिवर्तन तथा भाषा-प्रयोग की क्षमता तथा आरोहावरोह के नाटकीय प्रयोग का ज्ञान भी नितान्व आवश्यक है।

७. आवश्यकतानुसार अंग-संचालन तथा भावभंगिमाओं के प्रयोग में भी पटु होना चाहिए किन्तु यह सब शिष्टता भी सीमा में हो।

८. कहानी में बालकों की एकाग्रता तथा उनकी सक्रियता को आद्यन्त बनाए रखने के लिए यदाकदा मार्मिक प्रश्नों के विधान में अध्यापक सचेष्ट और पटु हो।

९. चित्रात्मक भाषा के प्रयोग का अच्छा जानकार हो।

संस्कृत कहानियों की विशेषताएँ

प्रत्येक साहित्य की अपनी कुछ मूलभूत विशेषताएँ होती हैं। उसका यह वैशिष्ट्य ही उसकी आत्मा होती है। संस्कृत कहानियों का भी एक अपना वैशिष्ट्य है। उसका परिचय निम्न बातों में निहित है—

१. सोद्देश्यता—उनकी पहली विशेषता है कि वे एक निश्चित उद्देश्य को सामने रखकर लिखी गई हों। उनकी रचना का प्रयोजन उद्देश्यहीन मनोरंजन नहीं है। उनका उद्देश्य 'धर्मार्थ काम' की प्राप्ति है। लोकनीति, राजनीति तथा आचारिक शिक्षा उनका एक सुनिश्चित ध्येय रहा है। विष्णु शर्मा लिखित 'पंचतंत्र' इसका प्राचीनतम उदाहरण है। दूसरा ग्रन्थ हितोदेश इस शृंखला की दूसरी-रचना है तथा कालान्तर की रचनाएँ 'वृहत्कथा' 'वृहत्कथा-मंजरी', 'कथा-सरित्सागर', सिंहासन द्वात्रिंशतिका' आदि हैं।

२. कथावस्तु—संस्कृत कहानियों की कथावस्तु अत्यन्त रोचक तथा क्रमबद्ध है। जीवन की विविध परिस्थितियों से निर्मित ये कहानियाँ लेखक की मौलिकता की परिचायक हैं। यदि जे० बो० ईसनबीन की कहानी-विषयक निम्नोक्ति को कसौटी माना जाय तो संस्कृत कहानियाँ उसपर पूर्णतया खरी सिद्ध होती हैं—

"प्रभाव की एकता, कथानक की श्रेष्ठता, घटना की प्रधानता, एक प्रधान पात्र और किसी एक समस्या का समाधान-कहानी में ये पाँच गुण होने चाहिए।"

३. चरित्र-चित्रण—संस्कृत की कहानियों में दो प्रकार के पात्र मिलते हैं—१. पशु-पक्षी आदि २. मानव। इन कहानियों का ताना-बाना थोड़े से पात्रों से बुना गया है। परन्तु प्रत्येक की चारित्रिक विशेषताओं का निरूपण बड़ी सुन्दरता से हुआ है।

४. कथोपकथन—कथोपकथन रुचिकर तथा सरल, सुबोध भाषा में नियोजित है। भाषा का प्रयोग भी पात्रों के अनुरूप हुआ है।

५. भाषा-शैली—संस्कृत कहानियों की भाषा सरल, बोधगम्य और प्रवाहपूर्ण है। आद्यन्त रुक्षता के परिहार की दृष्टि से शैली में पर्याप्त वैविध्य भी मिलता है। कहानियों को सम्पूर्ण कथ्य पूर्णतया गद्य में न होकर यदाकदा प्रासंगिक पद्योक्तियों का भी लेकर चलता है जो कि शैली वैविध्य का ही पोषक है। विशेषतः यह स्थिति उपदेशों के सन्निवेश में मिलती है जहाँ उनका सूक्तिवत प्रयोग अधिक समीचीन समझा गया है।

कहानी-शिक्षण

कहानी साहित्य की एक विशिष्ट विधा के रूप में प्रतिष्ठित है। अतः सामान्य गद्य की अपेक्षा उसके अध्यापन की अपनी पृथक आवश्यकताएँ होती

हैं। जब तक उन आवश्यकताओं पर समुचित ध्यान न दिया जाय तब तक उनसे अभीष्ट उद्देश्यों की सिद्धि नहीं होती। अतः कहानी-शिक्षण में निम्न बातें विचारणीय रहती हैं—

१—कहानियाँ पाठ्यपुस्तकों में भी होती हैं तथा द्रुतपाठ पुस्तकों में भी रहती हैं। किन्तु जहाँ पाठ्यपुस्तकें गहन अध्ययन के निमित्त होती हैं वहीं द्रुतपाठ पुस्तकें-व्यापक अध्ययन की वस्तु होती हैं। सूक्ष्म अथवा गहन अध्ययन उनका उद्देश्य नहीं होता। अतः शिक्षण—विधि की दृष्टि से आवश्यक होगा कि द्रुतपाठ-पुस्तक में संग्रहीत कहानियों का अध्ययन उसी प्रक्रिया अथवा शिक्षण-सोपानों के अनुसार होना चाहिए जिनका निर्देश द्रुतपाठ के अध्याय में किया गया है। इसके विपरीत जो कहनियाँ पाठ्यपुस्तकों में संग्रहीत हों उनका अध्यापन शिक्षक को स्वयं मौखिक रूप में करना चाहिए। इस प्रसंग में में पहले कहा जा चुका है कि ऐसी संग्रहीत कहानियों की भाषा सरल और बोधगम्य होनी चाहिए। किन्तु कभी-कभी देखा जाता है कि अन्य दृष्टियों से कहानी की उपयोगिता को समुचित महत्व देते हुए भी संकलनकर्ता भाषा-पक्ष की उपेक्षा कर देते हैं तथा उनकी भाषा उतनी हो कठिन रहती है जितनी कि पाठ्यपुस्तक के अन्य पाठों को होती है। अतः ऐसी स्थिति में उनका अध्यापन भी सामान्य गद्य की अध्यापन शैली में करना पड़ता है क्योंकि परीक्षा में पाठ्यपुस्तकों में संग्रहीत किसी भी पाठ से वे सारी बातें पूछी जा सकती हैं जो गद्य के किसी भी पाठ से पूछी जाती हैं जिनमें कि शब्दार्थ तथा शब्द-प्रयोग भी सम्मिलित होते हैं। इस स्थिति को दृष्टिगत रखते हुए पाठ्य-पुस्तक में संग्रहीत ऐसी कहानियों का शिक्षण निम्न सोपानों के आश्रय से तथा कठिन शब्दों के अर्थ बताते हुए करना चाहिए अन्यथा कहानी-शिक्षण में शब्दार्थ व्याख्या के लिए सामान्यतः स्थान नहीं होता। यह बात भली भाँति स्मरण रखनी चाहिए :—

शिक्षण-क्रम

अतः उपरियुक्त कथन के अनुसार कहानी का शिक्षण-क्रम इस प्रकार होना चाहिए।

१. सामान्य प्रारम्भिक बातें

२. सामान्य उद्देश्य

३. विशिष्ट उद्देश्य

४. सहायक सामग्री-(चित्रादि)।

५. पूर्वज्ञान--(यदि कोई हो) ।

६. उद्देश्य-कथन

७. प्रस्तावना-चित्र पर प्रश्नों द्वारा ।

८. पाठोस्थापन शीर्षक के अन्तर्गत—

(क) इस बात का उल्लेख कर देना चाहिए कि प्रस्तुत पाठ कितनो अन्वितियों में प्रस्तुत होगा तथा कौन-सी अन्विति कहाँ से कहाँ तक की होगी ।

(ख) कठिन शब्दों के अर्थ तथा पात्रों का नामोल्लेख श्याम पट पर पहले ही कर देना चाहिए जिससे कि कथा की श्रृंखला को समझने में बालकों को भ्रम नहो । इस कार्य के उपरान्त निम्न-शीर्षकों के आश्रय से मूलपाठ पर आ जाना चाहिए । पोठोप-स्थापना उद्देश्य-कथन के समाप्त होते ही इस प्रकार स्वतः प्रारम्भ हो जाती है ।

९. अध्यापक-कथन—रोचक सरल और सुबोध भाषा में अध्यापक द्वारा कहानी के प्रथक अंश की मौखिक प्रस्तुति ।

१०. बोध-प्रश्न—(उपर्युक्त अंश पर)

११. अध्यापक-कथन—पूर्वोक्त विधि से कहानो के शेष भाग की प्रस्तुति ।

१२. बोध-प्रश्न—कहानी के शेष भाग पर पूर्ववत् प्रश्न ।

१३. पुनरावृत्ति—सम्पूर्ण कहानो पर केन्द्रीय महत्व के प्रश्न अथवा उसकी विभिन्न छात्रों द्वारा खण्डशः पुनरावृत्ति । इस पुनरावृत्ति के दो रूप हो सकते हैं—

१. कहानी को पात्रों के अनुसार भिन्न-भिन्न छात्रों में आवंटित कर उनसे अपने-अपने वार्तालाप को क्रमशः पात्रवत् आवृत्ति करवाना ।

२. कथानक के संक्षिप्त अनुकथन सहित कहानीगत संदेश अथवा शिक्षा पर प्रकाश ।

१४. श्यामपट्ट-कार्य—शब्दों के काठिन्य-निवारण तथा पात्रों के नामोल्लेख का कार्य एवं पाठ-सारांश का उल्लेख श्यामपट्ट पर होगा ।

१५. गृह-कार्य—इसके कई रूप हो सकते हैं, यथा—

१. घर से विभिन्न पात्रों के वार्तालाप का सारांश-लेखन।
२. घटनाओं की क्रमागत रूपरेखा की रचना।
३. कहानी पर किए गए कतिपय प्रश्नों के उत्तर लिखवाना आदि।

कथा पाठ योजना

[प्रथम]

सुवर्णहंस-कथा

पुरा वाराणस्यां यज्ञदत्तो नाम राजा आसीत्। तस्य राज्य काले भगवान् बोधिसत्त्वः ब्राह्मणकुले अजायत। तस्य एका पत्नी तिस्रः कन्याश्चासन्। अथ काले मृतो बोधिसत्त्वः जन्मान्तरे सुवर्णमयो हंसः जातः। अथैकदा जन्मान्तरीयायाः कुटुम्बिन्याः दुःखमवगम्यः तस्याः दुःखं दूरी कर्तुं स तद्गृहं गतवान्। अथ तस्यैः सः प्रतिदिनं पिच्छमेकं प्रदत्तवान्। अथैकदा ब्राह्मणी व्यचिन्तयत् को विश्वासः पक्षिसु ? यदि कदापि स आगमनेन विमुखः भवति तदा किं करिष्यामि। भवतु, सर्वाणि पिच्छानि अहमेकवारमेव गृह्णामि। एवं चिन्तयन्त्या तया हंसस्य सर्वाणि पिच्छानि उत्पाटितानि।

अहो, किमाश्चर्यम् ! सर्वाणि तानि पिच्छानि हिरण्यमयानि नासन्। दुःखिता ब्राह्मणी पश्चात्तापमकरोत्। हंसस्तु न कदापि पुनस्तत्रागतः।

विद्यालय का नाम........................ **दिनांक**................

अध्यापक का नाम........................ **कक्षा**–अष्टम्

विषय–संस्कृत-कथा **अवधि**–४० मिनट

शीर्षक–सुवर्ण हंस कथा

सामान्य उद्देश्य—१. कथागत गद्यांश के शब्दार्थ एवं भाव के ज्ञानार्जन के साथ-साथ उन्हें अपनी भाषा में अभिव्यक्त करने की योग्यता प्रदान करना।

२. कथागत गद्यांश के भावों एवं विचारों के अनुरूप वाचन की क्षमता उत्पन्न करते हुए संस्कृत के कथा-साहित्य से परिचित कराना।

३. शब्दों एवं सुभाषितों की कोशवृद्धि के साथ-साथ ज्ञान वृद्धि करना।

४. संस्कृत साहित्य में प्रचलित कथा शैलियों से परिचय कराना तथा कल्पना एवं तर्कशक्ति की अभिवृद्धि करना।

५. पाठगत शिक्षा को अपने जीवन और आचरण में उतारने की प्रेरणा देना।

६. छात्रों को स्वस्थ मनोरंज्जन की ओर प्रवृत्त करना।

७. संस्कृत साहित्य एवं भाषा के प्रति रुचि उत्पन्न करना।

विशिष्ट उद्देश्य—'सुवर्ण हंस-कथा' के माध्यम से छात्रों को यह शिक्षा देना कि अधिक लोभ नहीं करना चाहिए।

सहायक सामग्री—कक्षा-शिक्षण के सामान्य उपकरण तथा कथापर आधृत एक चित्र एवं लपेट श्यामपट्ट पर लिखी हुई सम्पूर्ण कथा।

पूर्वज्ञान—छात्र अपनी मातृभाषा में अनेक कथाओं से परिचित हैं तथा हंस के बारे में जानते हैं।

उद्देश्य-कथन—शिक्षक छात्रों से कहेगा कि आज हम इस चित्र में प्रदर्शित सुवर्ण हंस की कथा का अध्ययन करेंगे।

प्रस्तावना—देव्याः सरस्वत्याः वाहनः कः अस्ति ?
हंसस्य वर्णः कीदृशः भवति ?
चित्रेऽस्मिन् कीदृशः हंसः दृश्यते ? (चित्र प्रदर्श्य)

पाठोपस्थापन—सम्पूर्ण पाठ एक ही अन्विति में पढ़ाया जायगा।

अध्यापक-कथन—शिक्षक उचित आरोहावरोह-क्रम से कथा का वाचन करेगा।

बोध-प्रश्न—यज्ञदत्तः कः आसीत् ?
एकदा बोधिसत्वः कुत्र गतवान् ?
तत्र गत्वा स किमकरोत् ?
बोधिसत्त्वः कस्मिन् कुले जन्म अलभत ?
स वृद्धायै किं प्रदत्तवान् ?

पुनरावृत्ति—ब्राह्मणी किम् अचिन्तयत् ?
ब्राह्मणी पश्चात्तापं कथमकरोत् ?
तया किं कृतम् ?

श्यामपट्ट कार्य—

शब्द	अर्थ	विधि
अथैकदा	एकवार	अथ + एकदा
अवगम्य	जानकर	अव + गम + ल्यप्
पिच्छम्	पूंछ	द्वितीया
व्यचिन्तयत्	सोचा	वि + अचिन्तयत्
उत्पाटितानि	उखाड़दिया-नोचदिया	
हिरण्य	सोना	
नासन्	नहीं थे	न + आसन्
कदापि	कभी भी	कदा + अपि
तत्रागतः	वहाँ आया	तत्र + आगतः

गृहकार्य—श्यामपट्ट पर लिखे हुए शब्दों के आधार पर संस्कृत में इस कथा का सारांश लिखो।

राजा, बोधिसत्वः, अजायत, सुवर्णमयः हंसः, पक्षिषु, उत्पाटितानि, गृह्णामि।

कथा पाठ-योजना

[द्वितीय]

परपीडनं न युक्तम्

एकदा केचित् बालकाः पाठशालया निवर्तन्तेस्म। मार्गे तैः कश्चित् जलाशयः दृष्टः। तत्र बहवः मण्डूकाः आसन्। मण्डूकान् दृष्ट्वा उपलान् प्रक्षेप्तुं ते आरभन्त। पाषाणैः हताः दर्दुराः इतः ततः पलायन्त। अचिरात् ते प्रहारं सोढुम् अशक्ताः। तदा एकः वृद्धः भेकः तटम् आगत्य अवदत् 'अयि बालकाः विरमत यूयं क्रीडनात्। युष्माकं तु क्रीड़ा भवति अस्माकं तु मरणमेव निष्पद्यते" इति। एवत् श्रुत्वा किंचित् विचिन्त्य ज्येष्ठः बालः अवदत् "सत्यं वदति एष भेकः। परस्य दुःखेन सुखं न विन्देमहि" इति।

विद्यालय का नाम········ दिनांक·······

अध्यापक का नाम········ कक्षा—अष्टम्

विषय—संस्कृत-कथा अवधि—४० मिनट

शीर्षक—'परपीड़नं न युक्तम्'

सामान्य उद्देश्य—१. छात्रों की कल्पनाशक्ति का विकास करना।

२. उनकी तर्कशक्ति का विकास करना।

३. उन्हें मानव-चरित्र की विशेषताओं से परिचित कराते हुए उनके चरित्र-निर्माण में योग देना।

४. उन्हें संस्कृत के कथा-साहित्य से परिचित कराना।

५. छात्रों को स्वस्थ मनोरंजन की ओर प्रवृत्त करना।

विशिष्ट उद्देश्य— छात्रों का मनोरंजन करते हुए यह बताना कि किसी जीव को कष्ट नहीं देना चाहिए।

सहायक सामग्री— कक्षा-शिक्षण के सामान्य उपकरण तथा कथा पर आधृत एक चित्र एवं लपेट श्यामपट्ट पर लिखी हुई सम्पूर्ण कथा।

पूर्वज्ञान— छात्र मेढक के स्वरूप से परिचित हैं।

उद्देश्यकथन— छात्रों का मनोरंञ्जन करते हुए यह बताना कि किसी जीव को कष्ट नहीं देना चाहिए।

प्रस्तावना— कथा के अनुसार बनाये गये चित्र को दिखाते हुए निम्नलिखित प्रश्न छात्रों से पूछें जायेंगे—

१. अस्मिन् चित्रे किं दृश्यते ?

२. भूमौ के प्राणिनः दृश्यन्ते ?

३. बालकाः किं कुर्वन्ति ?

४. मण्डूकाः कुत्र स्थिताः ?

आज हम "पर पीड़नं न युक्तम्" कथा पढ़ेंगे।

पाठोपस्थापन— सम्पूर्ण पाठ एक अन्विति में पढ़ाया जायगा।

अध्यापक-कथन— अध्यापक द्वारा समस्त कथा उचित आरोहावरोह क्रम से पढ़ी जायगी।

सम्पूर्ण पाठ एक ही अन्विति में पढ़ाया जायगा।

विचार विश्लेषणात्मक प्रश्न—

१. केषाम् इयं कथा ?

२. जलाशये के आसन ?

३. बालकाः किं कर्तुम् आरभन्त ?

४. ते दर्दुराः कुत्र पलायन्त ?

पुनरावृत्ति—

(क) १. बाला: उपलान् कुत्र प्राक्षिपन् ?
२. वृद्धः भेकः कुत्र आगतः ?
३. स बालकेभ्यः किम् अकथयत् ?
४. बालानां क्रीड़या केषां मरणं भवति ?
५. ज्येष्ठ बालः किम् अवदत् ?

रिक्तस्थान की पूर्ति करें—

(ख) १. बालकाः भेकान............अताडयन् ।
२. मण्डूकाः............निवसन्तिस्म ।
३. मार्गे बालकाः............अपश्यन् ।
४. एकः............बालकः अवदत् ।
५. बालानां क्रीड़या भेकानाम्............भवति ।

(ग) निम्नलिखित शब्दों का वाक्य में प्रयोग करें—
केचित्, निवर्तन्तेस्म, प्रक्षेप्तुम्, सोढुम्, आगत्य, ज्येष्ठः, परस्य ।

(घ) शिक्षक इस कथा पर छात्रों को पात्र बनाकर एक संक्षिप्त संवाद करायेगा । शिक्षक संवाद लपेट श्यामपट्ट पर लिखकर घर से लायेगा अथवा उसकी प्रतियाँ कर छात्रों में वितरित करेगा ।

श्यामपट्टकार्य—

शब्द	अर्थ	विधि
एकदा	एक बार	एक + दा
दृष्टः	देखा	दृश + क्त
प्रक्षेप्तुम्	फेंकने के लिए	प्र + क्षिप् + तुमुन्
सोढुम्	सहने के लिए	सह + तुमुन्
भेकः	मेढक	
श्रुत्वा	सुनकर	श्रु + क्त्वा
दर्दुराः	मेढक	भेके मण्डूक वर्षा भूशालूरप्लव दर्दुराः (अमर कोषः)

गृहकार्य— सम्पूर्ण कथा लिखकर लायें ।

अभ्यासार्थं प्रश्न

१. साहित्य तथा शिक्षण में कहानी के महत्त्व का निरूपण कीजिए।

२. छात्रों के विभिन्न स्तरों के लिए उपयोगी कहानियों का चयन आप किस आधार पर करेंगे स्पष्ट कीजिए।

३. कहानी-शिक्षण के उद्देश्य क्या हैं—स्पष्ट कीजिए।

४. कहानी सुनानेवाले अध्यापक में क्या-क्या विशेषताएँ अपेक्षित रहत हैं—उनका उल्लेख कीजिए।

५. संस्कृत कहानियों की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

६. कहानी-शिक्षण में ध्यान देने योग्य बातों का विवरण दीजिए।

७. कहानी-शिक्षण के सोपानों का उल्लेख कीजिए तथा उनका औचित्य भी सिद्ध कीजिए।

१२

द्रुतपाठ की शिक्षा

द्रुतपाठ क्या है ?

पाठ्यपुस्तक के प्रकरण में हम पहले कह चुके हैं कि पाठ्यपुस्तकें आज भी शिक्षा की धुरी हैं तथा सम्पूर्ण शिक्षा-दीक्षा उन्हीं के माध्यम से दी जाती है। परन्तु वे गहन अथवा सूक्ष्म अध्ययन के निमित्त होती हैं। ये पुस्तकें कुछ गिने-चुने विषयों अथवा पाठों पर ही आधारित होती है। और उन्हीं का बहुविध अध्ययन अध्यापक और अध्येता का साध्य रहता है। किन्तु उनसे बालकों की बहुज्ञता तथा उनके ज्ञान-क्षितिज का अपेक्षित विस्तार नहीं होता क्योंकि वे कतिपय सुनिश्चित पाठों तक ही सीमित रहती हैं। अतः उनसे भाषा का ज्ञान उतना व्यापक और परिपुष्ट नहीं हो पाता जितना कि अपेक्षित रहता है।

अतः इस कमी की पूर्ति के लिए भाषा के पाठ्यक्रम में कुछ सहायक पाठ्य-पुस्तकें भी निर्धारित रहती हैं जिन्हें 'द्रुतपाठ-पुस्तक' की संज्ञा दी गई है। द्रुत-पाठ के अध्यापन में गद्य-पाठ की अपेक्षा औपचारिकताएँ भी कम होती हैं

तथा सस्वर पाठ, आदर्श पाठ आदि जैसी क्रियाएँ नहीं होतीं न विषय-वस्तु के गहन विश्लेषण का ही लक्ष्य रहता है। द्रुतपाठ केवल गद्य ही में नहीं अपि तु पद्य में भी होता है। द्रुतपाठ का उद्देश्य मौन पाठ द्वारा कम से कम समय में पाठ्यवस्तु से अधिक से अधिक भावग्रहण का अभ्यास कराना होता है। दूसरे शब्दों में बालक में स्वाध्याय की प्रवृत्ति उत्पन्न करना जिससे कि वह अध्यापक-निरपेक्ष होकर कालान्तर में अध्ययन की दिशा में स्वावलम्वी बन सके। इसी उद्देश्य-भेद के कारण द्रुतपाठ पुस्तकें गद्यपाठ की पुस्तकों से अनेक दृष्टियों से भिन्न होती हैं जिनकी चर्चा हम आगे करेंगे।

द्रुतपाठ के सामान्य उद्देश्य

१. मौन वाचन के परिपुष्ट अभ्यास द्वारा पाठ्यवस्तु के बोध की क्षमता विकसित करना।

२. बोधपूर्वक शीघ्र पठन का अभ्यास।

३. साहित्य के व्यापक अध्ययन के प्रति रुचि जागृत करना।

४. छात्रों को स्वाध्याय की प्रेरणा प्रदान करना।

५. स्वस्थ मनोरंजन प्रदान करना।

द्रुतपाठ पुस्तकों का चयन—संस्कृत पाठ्यपुस्तकों की क्या विशेषताएं होनी चाहिए जिनके आधार पर विभिन्न कक्षाओं की पाठ्यपुस्तकों की रचना तथा उनका चयन किया जाय इस प्रश्न पर हम एक विगत अध्याय में विचार कर चुके हैं। इस दृष्टि से उतना ही महत्त्वपूर्ण प्रश्न वस्तुतः इन सहायक पाठ्य-पुस्तकों का भी है। अतः उस पर भी दृष्टि निक्षेप कर लेना चाहिए। द्रुतपाठ पुस्तकों में जिन गुणों की अपेक्षा रहती है वे ये हैं—

१. प्रत्येक कक्षा के लिए निर्धारित द्रुतपाठ पुस्तक की भाषा उसकी मूल पाठ्य पुस्तक की भाषा की अपेक्षा सरल होनी चाहिए। इस दृष्टि से भाषा का स्तर पिछली कक्षा की पाठ्यपुस्तक का-सा होना चाहिए अर्थात् नवीं कक्षा के लिए निर्धारित द्रुतपाठ-पुस्तक की भाषा आठवीं की पाठ्यपुस्तक के स्तर की होनी चाहिए। पुस्तक में नए शब्दों का समावेश थोड़ी मात्रा में हो, सम्पूर्ण पुस्तक में आवंटित हो तथा प्रसंग में उनका प्रयोग इतने अच्छे ढंग से हुआ हो कि बालकों को उनका स्थानीय अर्थ तथा उस वाक्य के भाव का बोध अवश्य हो जाय। कुल मिलाकर उसकी भाषा सरल, सुबोध तथा स्पष्ट हो।

२. विभिन्न पाठों के विषय-वस्तुका चयन तथा उसका निरूपण कक्षा के स्तरानुकूल हो।

३. द्रुतपाठ का एक उद्देश्य मनोरंजन के साथ ज्ञान-वर्धन करना है। अतः उसकी शैली तथा प्रसंग दोनों ही अत्यन्त रोचक होने चाहिए।

४. कहानियों में बालकों की रुचि शैशवावस्था से ही मिलती है। अतः छोटी कक्षाओं में यदि विषय को कहानियों के आवरण में प्रस्तुत किया जाय तो ये पुस्तकें बालकों के लिए पठन का एक आमंत्रण सिद्ध होती हैं।

५. पुस्तकें बहुविषयक ज्ञान की प्रतीक हों तथा उसीकी ओर उन्मुख हों जिससे बालकों के ज्ञान-क्षितिज का विस्तार हो, वे बहुज्ञ बन सकें तथा पाठ्यपुस्तक की इस कमी का परिहार हो सके।

६. पुस्तकें सर्वांग सुन्दर भी होनी चाहिए जिससे कि वे बालकों को प्रथम दृष्टि में ही अपनी ओर पठन के लिए आकृष्ट कर सकें अर्थात् उनके कागज, चित्रण, मुद्रण तथा मुखपृष्ठ आदि पर भी पूरा ध्यान दिया गया हो।

७. द्रुतपाठ पुस्तक की सामग्री ऐसी हो जो कि बालकों के चारित्रिक विकास में सहायक हो।

गद्यपाठ एवं द्रुतपाठ के शिक्षण में भेद

गद्यपाठ तथा द्रुतपाठ इन दोनों की प्रकृति भिन्न-भिन्न प्रकार की होती है तथा उनके अध्ययनाध्यापन के दृष्टिकोण अथवा उनके उद्देश्यों में भी पर्याप्त अन्तर होता है। अतः उसी के अनुसार उनकी शिक्षण-विधियों में भी अन्तर हो जाता है। विना इस भेद को भलीभाँति समझे हुए अध्ययन में प्रवृत्त होने से उद्देश्य की सिद्धि नहीं होती। अतः नीचे हम उसी पर विचार करेंगे—

गद्य-पाठ	द्रुतपाठ
१. गद्यपाठ में विषय-वस्तु का सूक्ष्म अध्ययन उद्देश्य रहता है तथा ठोस ज्ञान पर बल रहता है।	१. द्रुतपाठ में सूक्ष्म अध्ययन पर बल न रहकर विषय-वस्तु के व्यापक अध्ययन पर बल दिया जाता है। उसमें ठोस अध्ययन की अपेक्षा ज्ञान-क्षितिज के विस्तार तथा छात्रों की बहुज्ञता पर दृष्टि रक्खी जाती है।

२. गद्य-पाठ में उच्चारण की शुद्धि पर विशेष बल दिया जाता है; अतः उसमें सस्वर पठन की अपनी विशेष महत्ता होती है।	२. द्रुतपाठ में सस्वर पाठ का विधान होता ही नहीं। सम्पूर्ण अध्ययन केवल मौन पठन द्वारा होता है तथा विषयवस्तु के बोध पर बल रहता है।
३. गद्य पाठ में विचार विश्लेषण पर बल रहता है।	३. द्रुतपाठ में विचार-विश्लेषण नहीं होता। उसके स्थान पर भावबोध पर बल रहता है।
४. गद्य पाठ में शब्द-कोष की वृद्धि, एक सुनिश्चित लक्ष्य रहता है।	४. द्रुतपाठ में परिचित शब्दकोष के प्रयोग पर बल रहता है।
५. गद्य-पाठ में पाठ्यवस्तु के साथ ही व्याकरण के नियम का प्रयोग भी सिखाया जाता है।	५. द्रुतपाठ में व्याकरण को स्थान नहीं दिया जाता।
६. गद्य पाठ में आरोहावरोह-पूर्वक आदर्श पाठ का विधान आवश्यक समझा जाता है क्योंकि शुद्धोच्चारण-पूर्वक पठन का अभ्यास भी उसका लक्ष्य होता है।	६. द्रुतपाठ का लक्ष्य शीघ्र पठन द्वारा कम से कम समय में अधिक से अधिक भावग्रहण होता है। अतः उसका सम्पूर्ण अध्ययन केवल मौन पठन द्वारा होता है।
७. गद्यपाठ में विषय-वस्तु का अध्ययन कुछ पाठों तक ही सीमित रहता है, अर्थात् सब कुछ पाठ्य-पुस्तक तक ही सीमित रहता है।	७. द्रुतपाठ का अध्ययन-क्षेत्र गद्यपाठ की अपेक्षा अधिक विस्तृत होता है। इसमें सहायक पुस्तकों की संख्या एक से अधिक रहती है तथा इस प्रकार के अध्ययन में सहायक पुस्तकों के अतिरिक्त पत्र-पत्रिकाएँ आदि भी आ जाती है क्योंकि उसका चरम लक्ष्य बालकों में स्वाध्याय की प्रवृत्ति जागृत करना होता है।

संस्कृत में द्रुतपाठ का प्रारम्भ कब होना चाहिए—यह प्रश्न महत्त्वपूर्ण है। भारत की अन्य भाषाओं की अपेक्षा संस्कृत कुछ कठिन पड़ती है। संभव है कि जिस समय वह इस देश की मातृभाषा थी उस समय इतनी कठिनाई न पड़ती रही हो, किन्तु आज जबकि भिन्न-भिन्न प्रदेशों की मातृभाषा भिन्न-भिन्न है तथा संस्कृत द्वितीय भाषा के स्थान पर है, लोग कठिनाई का अनुभव अवश्य करते हैं। वस्तुतः विद्यार्थी उसे एक नई भाषा की मानसिकता में ही ग्रहण करते हैं।

मातृभाषा का अध्ययन तो प्रारम्भ से ही होता है किन्तु संस्कृत का अध्ययन छठीं कक्षा से रक्खा गया है। अतः उसके प्रारम्भ के समय से ही, जब कि बालक को मातृभाषा का ही कार्य-साधक ज्ञान नहीं हुआ रहता तभी से तथा भाषा-ज्ञान की इतनी छोटी पूंजी पर ही संस्कृत की द्रुतपाठ पुस्तकों का भी समावेश कर देना लाभप्रद नहीं हो सकता।

अतः संस्कृत की शिक्षा में द्रुतपाठ की पुस्तकों का सन्निवेश मध्यस्तर पर ही होना चाहिए, उसके पूर्व नहीं तथा इस कार्य का प्रारम्भ संस्कृत की सरलतम सहायक पुस्तकों द्वारा होना चाहिए।

द्रुतपाठ शिक्षण के सोपान

१. सामान्य प्रारम्भिक बातें।

२. **प्रस्तावना**—प्रत्येक पाठ में प्रस्तावना की एक अपनी भूमिका होती है। उसका उद्देश्य पाठ को प्रारम्भ से ही रोचक बनाता है। इस लिए सीधे पाठ्यवस्तु पर न आकर प्रस्तावना द्वारा कार्यारम्भ किया जाता है। प्रस्तावना बहुधा बालक के पूर्वज्ञान पर आधारित रहती है। किन्तु पूर्वज्ञान के अभाव में वह पाठ्य विषय की संक्षिप्त वर्णनात्मक पृष्ठभूमि अथवा चित्रों या प्रश्नों के माध्यम से भी की जाती है।

३. **सामान्य उद्देश्य**—द्रुतपाठ के सामान्य उद्देश्यों का उल्लेख हम पहले कर चुके हैं। इस शीर्षक के अन्तर्गत उनका उल्लेख करना चाहिए।

४. **विशिष्ट उद्देश्य**—सामान्य उद्देश्यों की पूर्ति तो लगभग सभी पाठों से न्यूनाधिक मात्रा में होती रहती है किन्तु विशिष्ट उद्देश्य प्रत्येक पाठ का अपना पृथक् होता है। यही कारण है कि विभिन्न पाठों के विशिष्टोद्देश्यों में भिन्नता मिलती है। अतः यहाँ अध्यापित होने वाले पाठ के विशिष्ट उद्देश्य का उल्लेख आवश्यक रहता है।

५. **पाठ-सहायक वस्तु**—अर्थात् पाठ को मनोरञ्जक तथा सुबोध बनाने के लिए पाठ में प्रयुक्त होने वाले चित्रों आदि की उपयोगिता अन्य पाठों

की भांति ही द्रुतपाठों में भी समानरूप से होती है। अतः पाठ-योजना में इनका उल्लेख होना चाहिए। इससे अध्यापक की कल्पना-शीलता प्रमाणित होती है।

६. **उद्‌देश्य-कथन**—प्रस्तावना के तत्काल बाद ही पाठ के प्रमुख उद्‌देश्य का अनुकथन आवश्यक है। यह कार्य छात्रों के समक्ष मौखिक घोषणा द्वारा होता है जिससे कि पाठारम्भ से ही वे उस पर दृष्टि रख सकें।

७. **विषयोपस्थापना**—(अथवा प्रस्तुतीकरण)—
उद्देश्य-कथन के तत्काल बाद ही अध्यापक मूलपाठ पर आ जाता है। कभी प्रस्तावित पाठ एक ही अन्विति में होता है कभी एकाधिक अन्वितियों में। अधिक अन्वितियों की आवश्यकता विषयवस्तु के काठिन्य पर निर्भर करती है।

८. **मौन-पाठ**—पहले कहा जा चुका है कि द्रुतपाठ में आदर्श अथवा सस्वर पाठ का विधान नहीं रहता। अतः उसका सम्पूर्ण अध्ययन केवल मौन-पाठ के आश्रय से होता है।

९. **भावबोध-परीक्षण**—यह कार्य प्रश्नों द्वारा होता है। इसमें भाव-ग्रहण के प्रश्न होते हैं, विचार-विश्लेषण के नहीं, क्योंकि इन पाठों का उद्‌देश्य सूक्ष्म अध्ययन नहीं होता।

बालक अपने अध्ययन-काल में केवल पाठ्यवस्तु के केन्द्रीय विचारों तथा नितान्त आवश्यक तथ्यों पर दृष्टि रखते हुए अग्रसर हो इसमें उसकी सहायता करने की एक उत्तम विधि यह है कि पाठ्य-वस्तु से संबंधित केन्द्रीय प्रश्नों का उल्लेख श्यामपट्ट पर पहले ही से कर दिया जाय तथा छात्रों को उन प्रश्नों के समाधान को लक्ष्य में रखकर पढ़ने की प्रेरणा पहले ही से दे दी जाय। इससे समय की बचत होती है तथा छात्रों की दृष्टि पैनी होती है। यही बात सभी अन्वितियों पर प्राप्त है।

१०. **पुनरावृत्ति**—पाठ के अन्त में सम्पूर्ण पाठ्यवस्तु के आवश्यक अंगों पर प्रश्न कर के उनके बोध की जांच करनी चाहिए तथा अन्त में पाठ का सारांश भी पूछना चाहिए।

११. **गृह-कार्य**—पाठ पर आधारित विचारों की परख के प्रश्न तथा नव-गृहीत शब्दों के प्रयोग पर घर के लिए कार्य देने का कार्य इस शीर्षक के अन्तर्गत होता है।

द्रुतपाठ-योजना

[प्रथम]

पाठ्यवस्तु

विज्ञानस्य प्रगतिः

साम्प्रतं विज्ञानस्य असाधारणेन चमत्कारेण संसारस्य सम्पूर्णा परिस्थितिरेव नवीनरूपे परिवर्तिता दृश्यते । सर्वेष्वेव देशेषु विशेषेण पाश्चात्त्येषु प्रतिदिनं नूतनैः अनुसन्धानैः प्रभावितं समस्तमेव मानव-जीवनम्, अभिनवमिव संजातम् । विद्यानां कलानां च सर्वासर्व-क्षेत्रेषु प्रसृतमस्ति विज्ञानस्य साम्राज्यम् । मानवस्य सर्वाण्यपि कर्माणि अद्यत्वे वैज्ञानिकाविष्काराणां साहाय्येनैव सम्पद्यन्ते । चिकित्सा-प्रणाल्यामपि विहितं परिवर्तनं विज्ञानेन चिकित्सकैः । मूढ़-श्रद्धायाम् अन्धविश्वासे च शैथिल्योत्पादनेन धर्मेऽपि विज्ञानचमत्कारः स्वप्रभावं प्रदर्शितवानेव । भौतिक-विज्ञानम्, रसायनम्, जीव-विज्ञानम्, वनस्पतिशास्त्रम्, ज्योतिष-विज्ञानम्, खगोल शास्त्रम् इत्यादयः बहवः सन्ति विस्तृता विभागाः विज्ञानस्य । विज्ञानस्य महिम्ना बहवो लाभाः संजाताः मानव-समाजस्य । धूमशकटम्, वाष्पयानम, वायुयानम्, जलयानम् इत्यादीनां यात्रासाधनानां सौलभ्येन सुदूरस्थान्यपि स्थानानि समीप-स्थानि संजातानि । नवीनयन्त्राणां साहाय्येन सुदूरस्थानामपि देशानां समाचारं क्षणेनैव ज्ञातुं शक्नोति स्वस्थानस्थित एव मानवः । आकाशवाणी यन्त्राणां प्रभावेण विश्वस्य कस्मिन्नपि कोणे क्रीयमाणं भाषणंम्, गीयमानं मनोहारि गीतं स्वगृहस्थित एव पुरुषः अल्पव्ययेनैव श्रोतुमर्हति । चिकित्सापद्धतौ अपि महती समुन्नतिः संजाता विज्ञानस्य महिम्ना । यातायातसाधनविशेषाः आविष्क्रियन्ते ।

एकत्र विज्ञानेन यथा अनेकानि उपयोगिवस्तूनि प्रस्तुतानि तथैव अन्यत्र सृष्टिसंहारकाणि अपि शस्त्रास्त्राणि सम्पादितानि । अथ च एकमपि यन्त्रं मनुष्याणां शतस्यापेक्षया क्षिप्रतरं कार्यं सम्पादयतीति हेतोः बहवः मानवाः कार्य-रहिताः संजायन्ते प्रतिदिनम् । मानवानां विलासितायाः, आवश्यकतायाश्च वर्धनेन महद् अनिष्टं सम्पादितं विज्ञानेन । शरीरं रक्षित्वापि विवेकं दूषयित्वा आत्मा-नमेव विनाशितवान् विज्ञानस्य दुरुपयोगः ।

पाठ-योजना

[प्रथम]

विद्यालय का नाम.................... दिनाङ्क....................

विषय—संस्कृत (द्रुतपाठ) समय—

प्रकरण—विज्ञानस्य प्रगतिः कक्षा—नवम

सामान्य उद्देश्य—१. मौनवाचन के परिपुष्ट अभ्यास द्वारा पाठ्यवस्तु के बोध की क्षमता विकसित करना।

१. बोधपूर्वक शीघ्र पठन का अभ्यास।

३. साहित्य के व्यापक अध्ययन के प्रति रुचि उत्पन्न करना।

४. छात्रों को स्वाध्याय की प्रेरणा प्रदान करना।

५. स्वस्थ मनोरंजन प्रदान करना।

विशिष्ट उद्देश्य— छात्रों को 'विज्ञान की देन' के सम्बन्ध में जानकारी देना। उन्हें विज्ञान के दुरुपयोग से बचाने तथा उसके उचित उपयोग की प्रेरणा देना।

सहायक सामग्री— कक्षा-शिक्षण के सामान्य साधन।

पूर्वज्ञान— छात्र, रेडियों, रेलगाड़ी, हवाईजहाज आदि वैज्ञानिक उपलब्धियों से परिचित हैं।

प्रस्तावना १. सुदूरदेशानां समाचारं क्षणेनैव कथं ज्ञातुं शक्यते ?

२. केनोपायेन आकाशविचरणं सम्भाव्यते ?

३. मानवानां सुखसाधनानि केनोपनीतानि ?

उद्देश्य-कथन— आज हमलोग वैज्ञानिक उपलब्धियों के विषय में अध्ययन करेंगे।

विषयोपस्थापना— अध्यापन की सुविधा के लिए प्रस्तुत पाठ को दो अन्वितियों में पढ़ाया जायगा।

प्रथमान्विति—

'साम्प्रतं……………विभागाः विज्ञानस्य'

मौन-पाठ— कक्षा के सम्पूर्ण छात्रों को प्रथमान्विति का मौन-वाचन कराया जायगा।

भावबोधात्मक प्रश्न—

१. कुत्र कुत्र विज्ञानस्य प्रभुत्वं परिलक्ष्यते ?

२. विज्ञानेन के लाभाः अभवन् ?

३. विज्ञानेन आविष्कृतानां यात्रासाधनानां कानि नामानि सन्ति ?

द्वितीयान्विति—

'विज्ञानस्य महिम्ना……………विज्ञानस्य दुरुपयोगः।'

मौन-पाठ— अध्यापक छात्रों को द्वारा द्वितीयान्विति का मौन-वाचन करायेगा।

भावबोधात्मक प्रश्न—

१. आकाशवाणीयन्त्रेण को लाभः ?

२. कानि प्रमुखानि यातायातसाधनानि आविष्कृतानि ?

३. विज्ञानेन काः काः क्षतयः कृताः क्रियन्ते च ?

पुनरावृत्ति— १. विज्ञानेन मानवजीवनं कथं प्रभावितम् ?

२. कस्मिन् क्षेत्रे विज्ञानस्य प्राधान्यं वर्तते ?

३. के प्रमुखाः वैज्ञानिकाविष्काराः सन्ति ?

श्यामपट्ट-कार्य— यदि छात्र किन्हीं शब्दों की व्याख्या की माँग करेंगे तो उनका स्पष्टीकरण श्यामपट्ट पर किया जायगा।

गृह-कार्य— घर से इस पाठ का सारांश लिखकर ले आयें।

द्रुतपाठ-योजना

[द्वितीय]

पाठ्यवस्तु

सुभाषचन्द्र बोसः

अस्माकमयं देशः बहुकालं पारतन्त्र्यदुःखमनुभूय भगवदनुग्रहेण अद्य स्वातन्त्र्यमुपभुङ्क्ते। परं तत्स्वातन्त्र्यं तिलक-गान्धि-सुभाषनेहरूप्रभृतीनां महतां नेतॄणां तपसः, वीरसैनिकानां सर्वस्वबलिदानस्य च फलमिति। श्रीसुभाषस्तु विलक्षणं रहस्यमयं मार्गमवलम्ब्य भारतमातुः परतन्त्रतापाशं छेत्तुं आमृत्योः प्रायतत। तस्य प्रेरणामयं चरितं सदैव युवकानां हृदयानि सदुत्साहपूर्णानि देशभक्तिपरिप्लावितानि च कर्तुं प्रभविष्यति।

एष महान् नेता श्रीसुभाषचन्द्रः वङ्गप्रान्ते जन्म लेभे। अस्मिन्नेव प्रदेशे रामकृष्ण परमहंस-रवीन्द्रनाथठाकुर जगदीशचन्द्रप्रभृतयो महापुरुषाः आविर्भूय स्वमाहात्म्येन अस्माकं देशस्य ख्यातिं दिशि दिशि प्रसारयामासुः। श्रीसुभाषस्य प्रारम्भिकी शिक्षा कटकनगरस्यैकस्मिन् आङ्गलविद्यालये बभूव। तत्रैवायं आङ्गलजातीयानां सहपाठिनां दुर्व्यवहारेण खिन्नः आङ्गलदेशीयाः "अस्माकं शासकाः, वयं च तैः शासिताः" इति अनुभवतिस्म। श्रीसुभाषः ब्रह्मचर्यव्रतं गृहीत्वा आत्मानं देशसेवायै समर्पितवान्। अस्य हृदये हिमालयं गत्वा तपस्वि-

कीर्षापि समजनि। अतोऽयं योग्यं गुरुमन्वेष्टुं व्रजभूमौ बभ्राम। तत्र तथाविधं गुरुमसम्प्राप्य स्वगृहं प्रतिनिवृत्तः।

ततश्च बी० ए० परीक्षामुत्तीर्य आई० सी० एस० परीक्षामुत्तरितुम् इङ्गलैंडं देशं जगाम। तत्र परीक्षायां सफलीभूय यदा स्वदेशं न्यवर्तत तदात्र देशे महात्मा-गांधिना असहयोगान्दोलनं प्रवर्तितमासीत्। श्रीसुभाषस्य हृदयेऽपि राष्ट्र सेवायाः भावना प्रज्वलिता।

मातृभूमिं सेवमानः तन्निमित्तं चानेकान् क्लेशान् सहमानः श्रीसुभाषः भारतमातुः परतन्त्रतायाः बन्धनं छेत्तुं दिने दिने अधिकतरां व्याकुलतामनुभवतिस्म। द्वितीयस्य महायुद्धस्य विभीषिका अखिलान् लोकान् आतङ्कितान् अकरोत्। एकदा रात्रौ स शाक्यमुनिरिव स्वभवनं परित्यज्य स्वपरिवारं शोक-विधुरं विहाय स्वदेशमाकुलीकृत्य ऐन्द्रजालिक इव कुत्रापि विलुप्तः। स आजाद-हिन्द-फौज-नाम्नीं सेनां स्थापयामास। श्रीसुभाषचन्द्रः शस्त्रवलेन भारतदेशं स्वतन्त्रं कर्तुंमियेष। सुभाषः वायुयानेन टोकियो नगरं प्रस्थितः। ततश्च "वायु-यानध्वंसेन यशः शेषतामगात्" इति किंवदन्ती प्रसृता।

पाठ-योजना

विद्यालय का नाम........................ दिनाङ्क................

विषय—संस्कृत (द्रुतपाठ) समय—

प्रकरण—श्रीसुभाष चन्द्र बोसः कक्षा—नवम

सामान्य उद्देश्य—१. मौन-पाठ के परिपुष्ट अभ्यास द्वारा पाठ्यवस्तु के बोध की क्षमता उत्पन्न करना।

२. बोधपूर्वक शीघ्र पठन का अभ्यास।

३. साहित्य के व्यापक अध्ययन के प्रति रुचि उत्पन्न करना।

४. छात्रों को स्वाध्याय की प्रेरणा प्रदान करना।

५. स्वस्थ मनोरंजन प्रदान करना।

विशिष्ट उद्देश्य— छात्रों को सुभाषचन्द्र बोस की जीवनी का सामान्य ज्ञान प्रदान करना।

२. श्रीसुभाषचन्द्र बोस के जीवन से राष्ट्रप्रेम की शिक्षा ग्रहण करने की प्रेरणा देना।

३. महापुरुषों के जीवन चरित पढ़ने की रुचि उत्पन्न कर अवकाश के क्षणों का सदुपयोग करने की प्रेरणा देना।

सहायक सामग्री— कक्षा-शिक्षण के सामान्य साधन।

पूर्वज्ञान— छात्र श्रीसुभाषचन्द्र बोस के नाम तथा उनके देशभक्ति के कार्यों का सामान्य ज्ञान रखते हैं।

प्रस्तावना— १. स्वतन्त्रतासंग्रामस्य के प्रमुखाः महापुरुषाः सन्ति ?

२. आजाद हिन्द फौज नाम्नीं सेनां कः स्थापितवान्।

३. कथं स भारतमातुः बन्धनानि छेत्तुम् इयेष ?

विषयोपस्थापना— अध्यापन की सुविधा के लिए प्रस्तुत पाठ को दो अन्वितियों में पढाया जायगा।

प्रथमान्विति—

'अस्माकमयं देशः.................अनुभवतिस्म।'

मौन-पाठ— कक्षा के सम्पूर्ण छात्रों को प्रथमान्विति का मौन-वाचन कराया जायगा।

भावबोधात्मक प्रश्न—

१. महान्तो नेतारः कथमस्माकं पूजाभाजनम् ?

२. सुभाषस्य चरितं किं कर्तुं प्रभविष्यति ?

३. सुभाषः कदा, कुत्र च जन्म लेभे ?

४. कटकनगरस्य विद्यालये पठन् सुभाषः किम् अनुभवतिस्म ?

द्वितीयान्विति—

'श्रीसुभाषः ब्रह्मचर्य व्रतंगृहीत्वा..........किं वदन्ती प्रसृता ?'

मौन-पाठ— शिक्षक कक्षा के सम्पूर्ण छात्रों के द्वारा द्वितीयान्विति का मौनवाचन करायेगा।

भावबोधात्मक प्रश्न—

१. कदा अयं मातृभूमिसेवायां संलग्नो बभूव ?

२: भारतमुक्त्यै कदा का च योजनानेन निर्मिता ?

३. कदा कुत्र च स "नेता जी" नाम्ना प्रसिद्धिमवाप ?

४. कां सेनां सत्तां च अयं स्थापितवान् ?

पुनरावृत्ति— १. श्रीसुभाषचन्द्र बोसः कथं प्रसिद्धि प्राप्तवान् ?

२. तस्य समकालिकाः नेतारः के आसन् ?

३. देशसेवाया; व्रतं कथं पालितवान् ?

४. का संस्था अनेन स्थापिता ?

श्यामपट्ट-कार्य— यदि छात्र किन्हीं शब्दों की व्याख्या की माँग करते हैं तो उसका स्पष्टीकरण श्यामपट्ट पर होगा।

गृह-कार्य— इस पाठ का सारांश घर से लिखकर लायें।

अभ्यासार्थ प्रश्न

१. द्रुतपाठ क्या है ? संस्कृत की शिक्षा में उसका प्रारम्भ कब होना चाहिए और क्यों ?

२. द्रुतपाठ तथा गद्य-पाठ का अन्तर स्पष्ट कीजिए।

३. गद्य-पाठ तथा द्रुत-पाठ के उद्देश्यों में क्या भेद होता है ?

४. गद्य-पाठ तथा द्रुतपाठ की शिक्षण-विधि में क्या अन्तर होता है और क्यों—कारण सहित उत्तर दीजिए।

५. एक द्रुत-पाठ पुस्तक में क्या-क्या विशेषताएँ होनी चाहिए ?

६. द्रुत-पाठ तथा गद्य की पाठ्यपुस्तकों का अन्तर स्पष्ट कीजिए तथा उसका कारण भी बताइए।

७. द्रुत-पाठ की पाठ-योजना के विविध सोपानों की व्याख्या कीजिए।

१३

नाटक की शिक्षा

'काव्येषु नाटकं रम्यम्'—की उक्ति के अनुसार काव्यों में नाटक ही सर्वाधिक सौंदर्यपूर्ण होता है। संस्कृत के विद्वानों ने काव्य के दो भेद किए हैं—१. श्रव्यकाव्य २. दृश्यकाव्य। श्रव्यकाव्य का आनन्द अध्ययन अथवा श्रवण द्वारा प्राप्त होता है। श्रव्यकाव्य की विधाओं में काव्यात्मक कथाएँ, कहानियाँ तथा निबंध आदि की गणना है। दृश्यकाव्य एक चाक्षुष वस्तु है। अतः वह दर्शनीय वस्तु है। नाटक इसी कोटि की रचना है जिसका अभिनय द्वारा मंचन होता है। इस में पात्र नाटक के पात्रों के रूप में अपनी वेशभूषा, मुख-मुद्रा, भाव-भंगिमाओं तथा क्रिया-कलापों सहित मँच पर उपस्थित होकर अपना अभिनय करते हैं। इसीलिए वह दृश्य है। उसके माध्यम से कर्णेन्द्रिय तथा नेत्रेन्द्रिय दोनों का सुख प्राप्त होता है क्योंकि नाटक श्रव्य और दृश्य दोनों का रूप है। 'नाटक' शब्द की उत्पत्ति 'नट' धातु से है तथा किसी अवस्था अथवा परिस्थिति का अनुकरण ही नाटक है जैसा कि भरत मुनि की उक्ति 'अवस्थानुकृतिर्नाट्यम्' से स्पष्ट है।

नाटक-शिक्षण के उद्देश्य

नाटक-शिक्षण के उद्देश्य ये हैं :—

१. मानव की प्रकृति तथा उसके चरित्र और उसके स्वभाव का अध्ययन करना।
२. लोक-व्यवहार तथा अवसरानुकूल आचरण की शिक्षा देना।

३. बालकों को संवाद-कला की शिक्षा देना।

४. उदात्त चरित्रों के अध्ययन द्वारा चरित्र-निर्माण की प्रेरणा देना।

५. नए शब्दों तथा उक्तियों के ज्ञानार्जन द्वारा भाषा-ज्ञान का विकास करना।

६. प्रश्नोत्तर तथा भाषण के प्रभावी ढंग की शिक्षा द्वारा सफल सामाजिक जीवन व्यतीत करने की क्षमता उत्पन्न करना।

नाटक की शिक्षण-विधियाँ—

नाटक-शिक्षण की प्रमुख विधियाँ ये हैं—

१. आदर्श नाट्य प्रणाली—इस विधि में अध्यापक नाटक के विभिन्न पात्रों के संवादों के अनुरूप सम्पूर्ण पाठ को पढ़ता है। इस पठन से छात्रों को विभिन्न पात्रों के चरित्र, उनके विचारों और मनोभावों का तो ज्ञान हो जाता है किन्तु सब कुछ अध्यापक द्वारा ही होने के कारण छात्र निष्क्रिय श्रोता बने बैठे रहते हैं। पाठ में उनका योगदान नहीं के बराबर रहता है। अतः यह विधि मनोवैज्ञानिक सिद्ध नहीं होती। इसके अतिरिक्त नाटक-शिक्षण के अनेक उद्देश्यों की इस से केवल आंशिक पूर्ति ही संभव हो पाती है। अतः यह विधि अनुपयुक्त है।

२. अभिनय-प्रणाली—यह विधि दो रूपों में कार्यान्वित की जा सकती है—

(क) **कक्षाभिनय-प्रणाली**—इसमें विना रंगमंच के विधान के छात्र विभिन्न पात्रों के स्थानापन्न बनकर बारी-बारी से उनका अभिनय उनके संवादों द्वारा करते हैं। इस में छात्रों का पूर्ण सक्रिय सहयोग रहता है तथा आदर्श नाट्य-प्रणाली की अपेक्षा अधिक लाभान्वित होते हैं। वेश-भूषा तथा मंच आदि का प्रयोग न होते हुए भी वे पात्रवत् कार्य करते हैं। अतः इससे नाटक-शिक्षण के अनेक उद्देश्यों की पूर्ति भी सहज ही में हो जाती है।

(ख) **रंगमंच-प्रणाली**—वस्तुतः यही विधि नाटक-शिक्षण की सर्वोत्कृष्ट विधि है जिसमें पूरी साज-सज्जा तथा पात्रों के अनुरूप वेशभूषा का प्रयोग करते हुए नाटक का अभिनय छात्र मंच पर करते हैं तथा आवश्यकतानुसार अध्यापक भी उसमें सहयोगी हो सकता है। यह विधि पूर्णतः मनोवैज्ञानिक है तथा नाटक-शिक्षण के सभी उद्देश्यों की पूर्ति में सहायक होती है।

३. **व्याख्या-प्रणाली**--इस विधि में अध्यापक नाटक के महत्त्वपूर्ण तथा कठिन अंशों की व्याख्या करता है तथा प्रश्नों के माध्यम से एवं कठिन शब्दों का अर्थ वताते हुए पात्रों के चरित्र का विश्लेषण करता जाता है। अतः यह विधि वहुत कुछ गद्य-शिक्षण विधि के समकक्ष सिद्धि होती है।

यदि नाटक-शिक्षण की इन विधियों पर सामूहिक रूप से विचार किया जाय तो स्पष्ट हो जायगा कि इनमें से कोई भी विधि नाटक-शिक्षण के अनेकानेक उद्देश्यों की पूर्ति में पूर्णतः सक्षम नहीं है। सभी में कुछ न कुछ कमियाँ दृष्टिगत होती हैं। अतः इस दृष्टि से नाटक के अध्यापन की संयुक्तविधि ही सर्वश्रेष्ठ विधि है जिसमें सभी विधियों के गुणों से लाभ उठाया गया हो। इस प्रकार मिश्रित विधि के प्रयोग से नाटक के कठिन अंशों की व्याख्या तथा पात्रों के चरित्रों का विश्लेषण व्याख्या-विधि की सहायता से किया जा सकता है, पात्रों की वेशभूषा तथा भावभंगिमाओं और आचरण-व्यवहार की प्रतोति के लिए अभिनय-प्रणाली के प्रयोग से लाभान्वित हुआ जा सकता। अतः एक कार्य-कुशल अध्यापक को इन सभी से लाभ उठाना चाहिए। इसमें सन्देह नहीं कि इस विधि के प्रयोग में समय किंचित् अधिक लग सकता है, किन्तु इस विधि से होने वाले लाभ की तुलना में उसका महत्त्व अधिक नहीं हो सकता।

नाटक-शिक्षण के सोपान--नाटक को पाठ-योजना के लिए अपेक्षित सोपान निम्न हैं--

१. सामान्य प्रारम्भिक बातें

२. सामान्य उद्देश्य

३. विशिष्ट उद्देश्य

४. पूर्व ज्ञान

५. सहायक सामग्री

६. प्रस्तावना

७. उद्देश्य-कथन

८. पाठोपस्थापन--

(क) पाठ-योजना के लिए निश्चित सम्पूर्ण पाठ का प्रस्तुतीकरण एक ही अन्विति में होना चाहिए। नाटक में अन्विति विभाजन उचित नहीं। बड़े नाटकों को दो-तीन पाठों में विभक्त कर एकाधिक दिन में पढ़ाना पड़ सकता है, किन्तु किसी एक ही दिन को पाठ में अन्वितिविजन पाठ को और भी अधिक विशृंखलित कर देता है जिससे कि विषय-वस्तु के संगठित प्रभाव में बाधा पड़ती है।

(ख) **अध्यापक द्वारा आदर्श वाचन**—समुचित आरोहावरोह सहित अध्यापक द्वारा आदर्श पाठ आवश्यक होता है किन्तु यह पठन आंगिक अभिनय से मुक्त होना चाहिए ।

(ग) **अनुवाचन**—अध्यापक द्वारा प्रस्तुत शैली पर छात्रों द्वारा ।

९. **पाठाभिनय**—विभिन्न छात्रों द्वारा पात्रवत् अभिनय-पाठ ।

१०. **बोध-परीक्षा**—प्रश्नों द्वारा ।

११. **शब्द-व्याख्या**—अर्थात् काठिन्य-निवारण ।

१२. **विचार-विश्लेषणात्मक प्रश्न**—जिसमें चरित्र-चित्रण सम्बन्धी प्रश्न भी सम्मिलित होंगे ।

१३. **पुनरावृत्ति**—सम्पूर्ण पठितांश पर विभिन्न दृष्टियों से किए गए प्रश्न ।

१४. **श्यामपट्ट-कार्य**

१५. **गृह-कार्य**

पाठ्यवस्तु

वीरबालको लवः

(नेपथ्ये)

भो भो सैनिकाः एषःखलु कुमारचन्द्रकेतुराज्ञापयति न कश्चिदाश्रमापर्णंभूमयः आक्रमितव्या इति ।

लवः —आर्य, क एष चन्द्रकेतुनाम ।
जनकः —जानासि रामलक्ष्मणौ दाशरथी ?
लवः —एतावेव रामायणकथापुरुषौ ?
जनकः —अथ किम् ।
लवः —तत्कथं न जानामि ?
जनकः —तस्य लक्ष्मणस्यात्मजश्चन्द्रकेतुः ।
लवः —उर्मिलायाः पुत्रस्तर्हि, मैथिलस्य राजर्षेर्दौहित्रः?
अरुन्धती —(विहस्य) आविष्कृतं कथाप्रावीण्यं वत्सेन ।
कौशल्या —जात! [redacted] भ्रातापि तेऽस्ति ?
लवः अस्ति आर्यः कुशोनाम ।
कौशल्या —ज्येष्ठ इति भणितं भवति ?
लवः —एवमेतत् । प्रसवक्रमेण स:[redacted] ज्येष्ठ: ।
जनकः —किं यमजावायुष्मन्तौ ?
लवः —अथ किम् ।

जनकः —वत्स कथय, कथाप्रवन्धस्य कियत् पर्यन्तं जानासि ?

लवः —अलीकपौरवादोद्विग्नेन राज्ञा निर्वासितां देवीं देवयजनसंभवां सीतामासन्नप्रसववेदनाम् एकाकिनीम् अरण्ये लक्ष्मणः परित्यज्य प्रतिनिवृत इति ।

कौशल्या —हा वत्से, मुग्धचन्द्रमुखि ! क इदानीं ते शरीरकुसुमस्य झटिति दैवदुर्विलासपरिणाम एकाकिन्यान्निपतितः ।

वटवः —(प्रविश्य) पश्यतु कुमारस्तदाश्चर्यम् ।

लवः —दृष्टमवगतं च । नूनमाश्वमेधिकोऽयमश्वः ।

वटवः —कथं ज्ञायते ?

लवः —ननु मूर्खाः, पठितमेव हि युष्माभिरपि तत्काण्डम् । किं न पश्यस्यथ प्रत्येकं शतसंख्या कवचिनो दण्डिनो निषङ्गिणश्च रक्षितारः । तत्प्रायमेव बलमिदं दृश्यते ।

लवः —भोः भोः, तत्किमक्षत्रिया पृथिवी यदेवमुद्घोष्यते ?
(नेपथ्ये) रे रे महाराजं प्रति कुतः क्षत्रियाः ।

लवः —धिग् जाल्मान् !

यदि ते सन्ति सन्त्येव केयमद्य विभीषिका ।
किमुक्तैरेभिरधुना तां पताकां हरामि वः ॥

भो भो वटवः ! परिवृत्य लोष्टैरभिघ्नन्तो नयतैनमश्वम् ।

पुरुषः —(प्रविश्य) (सक्रोधदर्पः) धिक् चापलम् ! किमुक्तवानसि ? तीक्ष्णतरा ह्यायुधश्रेणयः शिशो-रपिदृप्तां वाचं न सहन्ते । तदनेन तरुगहननापसर्पत ।

लवः —(विहस्य) किं नाम विस्फुरन्ति शस्त्राणि ?
(इति धनुरारोपयन्) किं न जानासि मम शौर्यम् ?

नाटक-पाठ-योजना

विद्यालय का नाम........................ दिनाङ्क....................

अध्यापक का नाम........................ कक्षा—नवम

विषय—'संस्कृतनाटक' अवधि—४० मिनट

शीर्षक—"वीरबालको लवः"

सामान्य उद्देश्य—१. मानव की प्रकृति तथा उसके स्वभाव का अध्ययन करना।

२. लोक व्यवहार तथा अवसरानुकूल आचारण की शिक्षा देना।

३. बालकों को संवाद कला की शिक्षा देना।

४. उदात्त चरित्रों के अध्ययन द्वारा चरित्र-निर्माण की प्रेरणा देना।

५. नये-नये शब्दों तथा उक्तियों के ज्ञानार्जन द्वारा भाषा-ज्ञान का विकास करना।

६. प्रश्नोत्तर तथा भाषण के प्रभावी ढंग की शिक्षा द्वारा सफल सामाजिक जीवन व्यतीत करने की क्षमता उत्पन्न करना।

विशिष्ट उद्देश्य— लव की वीरता से वाल्मीकीय रामायण की महत्ता एवं जीवन में निर्भीकता का पाठ पढ़ाना।

सहायक सामग्री— कथा-शिक्षण के सामान्य साधन।

पूर्व-ज्ञान— छात्र रामकथा से परिचित हैं तथा लव एवं कुश के विषय में सामान्य ज्ञान रखते हैं।

प्रस्तावना— १. लवकुशौ कस्यपुत्रौ आस्ताम् ?

२. तयोर्जन्म कुत्र अभवत् ?

३. कः तौ धनुर्विद्यामपाठयत् ?

उद्देश्य-कथन— आज हम 'लव की वीरता' का परिचय देनेवाले नाटक का रसास्वादन करेंगें।

पाठोपस्थापना— सम्पूर्ण पाठ एक ही अन्विति में पढ़ाया जाएगा।

आदर्श वाचन— शिक्षक सम्पूर्ण पाठ का उचित आरोहावरोह क्रम से समुचित भावभङ्गिमा के साथ वाचन करेगा।

अनुकरण वाचन कक्षा के कतिपय छात्रों द्वारा अनुकरण-वाचन कराया जायगा।

पाठाभिनय— छात्रों को पात्र बनाकर उन्हें संवाद बांट कर कथाभिनय करने को कहा जायगा।

बोध-परीक्षा १. चन्द्रकेतुः किम् आज्ञापयतिस्म ?

२. कुशः क्व किमर्थं च प्रेषितः आसीत् ?

शब्द-व्याख्या—

शब्द	अर्थ	विधि
उपागतः	आया हुआ	प्रत्यय प्रयोग द्वारा
रामायण कथा पुरुषौ-	रामायण के कथा-पुरुष	समास-विधि द्वारा
अभिज्ञः	जानकार	पर्याय कथन द्वारा
अलीकपौरवादोद्विग्नेन	असत्य लोकापवाद से उद्विग्न	समास-विधि
अधुनास्माभिः	इस समय हमलोगों के द्वारा	सन्धि-विधि

विचार-विश्लेषणात्मक प्रश्न—

१. लवः कथाप्रबन्धं कथमुपस्थापितवान् ?

२. अश्वरूपं कथा रीत्या वर्णयन्तिस्म ?

३. लवः अश्वमेधाश्वं कथं परिचिनोतिस्म ?

पुनरावृत्ति— १. लवस्य गमनानन्तरं कौशल्या किमुक्तवती ?

२. धनुरारोपयन् लवः किमुक्तवान् ?

श्यामपट्टकार्य— कठिन शब्द की व्याख्या श्यामपट्ट पर की जायेगी।

गृह-कार्य— छात्रों से लव का चरित्र चित्रण कर घर से लाने को कहा जायेगा।

अभ्यासार्थ प्रश्न

१. नाटक-शिक्षण के उद्देश्य क्या है ?

२. नाटक-शिक्षण की कितनी विधियाँ हैं तथा प्रत्येक के गुण दोष क्या हैं ?

३. नाटक-शिक्षण की सर्वश्रेष्ठ विधि आप किसे मानते हैं और क्यों स्पष्ट कीजिए।

४. नाटक-शिक्षण के लिए पाठ-योजना के विभिन्न सोपानों पर प्रकाश डालिए।

१४

पद्य-शिक्षण

कविता पर विचार करते समय सबसे पहला प्रश्न जो उठता है वह यह कि कविता क्या है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में—"कविता वह साधन है जिसके द्वारा शेष सृष्टि के साथ हमारे रागात्मक सम्बन्ध की रक्षा होती है और उसका निर्वाह होता है। जब मनुष्य प्रकृति के नाना रूपों और व्यापारों से ऊँचा उठकर अपने योग-क्षेम, हानि-लाभ, सुख-दुःख आदि को भूलकर तथा अपनी पृथक् सत्ता से छूट कर केवल अनुभूति-मात्र रह जाता है, अर्थात् जब उसके व्यक्तित्व का सामान्यीकरण हो जाता है, तब हम उसे मुक्त-हृदय कहते हैं। हृदय की इसी मुक्ति-साधना के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द-विधान करती आयी है, उसे कविता कहते हैं।"

संस्कृत के आचार्यों ने कविता की परिभाषा अपने-अपने ढंग से की है। पण्डितराज जगन्नाथ के शब्दों में—

"रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम्"

अर्थात् रमणीय अर्थ का प्रतिपादक शब्द हीं काव्य होता है।

आचार्य विश्वनाथ के शब्दों में—

'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्'—अर्थात् रस से युक्त वाक्य ही काव्य है। ध्वनिकार आनन्दवर्धनाचार्य काव्य में रस की महत्ता स्वीकार करते हुए भी काव्य की आत्मा ध्वनि को मानते हैं—

काव्यस्यात्मा ध्वनिः।

यदि अंग्रेजी साहित्यकारों के काव्य-सम्बन्धी विचारों पर दृष्टिनिक्षेप कीजिए तो वहाँ भी काव्य के स्वरूप तथा उसकी परिभाषा के सम्बन्ध में मत-वैभिन्य मिलता है। कारलायल के अनुसार—

"Peotry we call musical Thought."

अर्थात् हम जिसे कविता कहते हैं वह संगीतमय विचार है।

कालरिज के शब्दों में—

"Poetry is the best word in the best order."

अर्थात् कविता सर्वोत्तम शब्दों का सर्वोत्तम क्रमायोजन है।

मैथ्यू आर्नल्ड के अनुसार "कविता मूलतः जीवन की आलोचना है।"

तात्पर्य यह कि विभिन्न भाषाओं के आचार्यों ने अपने-अपने मत के अनुसार कविता की भिन्न-भिन्न प्रकार की परिभाषाएँ दी है किन्तु वह इनमें से किसी एक की परिभाषा में पूर्णतः निबद्ध नहीं हो सकी। इसमें सन्देह नहीं कि इन समस्त परिभाषाओं में कुछ न कुछ सार अवश्य है जो कि कविता की प्रकृति तथा उससे स्वरूप पर आप्त होता है तथापि वह उसके सम्पूर्ण स्वरूप का बोधक नहीं है।

वास्तव में कविता इन सभी गुणों का एक समन्वित स्वरूप होती है। कविता एक रसायन है जिसकी तुलना एक ऐसे पदार्थ से की जा सकती है जो कि अनेक रासायनिक क्रियाओं के अन्तर्योग से निर्मित वस्तु का रूप हो।

काव्य का महत्त्व—मानव जीवन में काव्य के अध्यापन का एक अपना महत्त्व है। कविता गद्य की अपेक्षा कहीं अधिक शक्तिशाली होती है तथा अपने श्रोता पर सद्यः प्रभाव डालने में भी अक्षुण्ण होती है। हमारे प्राचीन आचार्यों ने तो कविता के अध्ययनाध्यापन को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति का एक साधन माना था। आचार्य कुन्तल ने उसे कीर्ति-प्राप्ति का साधन भी माना है।

मानव मन को आह्लादित करने की उसमें अद्भुत क्षमता होती है जो कि साहित्य की अन्य विधाओं से लभ्य नहीं है। 'नहिं पराग नहिं मधुर मधु नहिं विकास यहि काल। अली कली ही सों बंध्यो आगे कवन हवाल ॥' रंग-

रति में लिप्त राजा जयसिंह पर विहारी के इस दोहे का प्रभाव इतिहास-प्रसिद्ध है। कविता की महत्ता को ही इंगित करते हुए महाकवि हरिऔध ने भी लिखा है—

मन रमा रमणी रमणीयता,
मिल गई यदि वह विधि-योग से।
पर जिसे न मिली कविता सुधा,
रसिकता सिकता सम है उसे।

अतः कविता का पठन-पाठन मानवजीवन के लिए अत्यन्त उपयोगी है। उसमें मानव की मनोभावनाओं के परिष्कार तथा उनके उदात्तीकरण की अद्भुत क्षमता होती है। हमारे प्राचीन आचार्यों के अनुसार कविता के अध्ययन से अशिव का निवारण भी होता है।

संस्कृत कविता-शिक्षण के उद्देश्य—संस्कृत कविता की शिक्षा निम्न उद्देश्यों से दी जानी चाहिए—

१. संस्कृत कविता के अध्ययन के प्रति छात्रों में अनुराग उत्पन्न करना।
२. कल्पना-शक्ति के विकास द्वारा आनन्दपूर्वक कविता के आस्वादन की शिक्षा देना।
३. कवि के मनोभावों के अनुरूप आरोहावरोह पूर्वक कविता-पाठकी क्षमता उत्पन्न करना।
४. कविता के पठन द्वारा छात्रों के मनोभावों के परिष्कार द्वारा उदात्त भावों के ग्रहण की क्षमता का विकास।
५. कविता के केन्द्रीय भावों के बोध को क्षमता उत्पन्न करना।
६. काव्यगत सौन्दर्य की अनुभूति क्षमता विकसित करना।
७. कविता की विभिन्न शैलियों से परिचय।
८. बालकों को वाच्यार्थ, लक्ष्यार्थ और व्यंग्यार्थ को समझने की शिक्षा देना।
९. कवि के काव्यगत संदेश से परिचय प्राप्त कराना।
१०. क्षमतानुसार छात्रों को संस्कृत काव्य-रचना की प्रेरणा देना तथा उसमें उनकी सहायता करना।

कविता की शिक्षण-विधियाँ—कविता का अध्यापन गद्य की विधाओं की अपेक्षा कठिन होता है। अतः सच्चे अर्थ में उसका अध्यापन स्वयं अपने में एक

कला है जिसका प्रदर्शन कोई कुशल अध्यापक ही कर सकता है। परन्तु सतत संलग्नता और श्रमपूर्वक उसके समुचित अभ्यास से एक जागरूक अध्यापक इस क्षमता में प्रवीण हो सकता है इसमें सन्देह नहीं। उसके शिक्षण की विधियाँ निम्न हैं :—

१. परम्परागत प्रणाली
२. गीत तथा नाट्यप्रणाली
३. व्याख्या-प्रणाली
४. दण्डान्वय-प्रणाली
५. खण्डान्वय-प्रणाली
६. भाष्य-प्रणाली
७. तुलना-प्रणाली
८. समीक्षा-प्रणाली

१. परम्परागत प्रणाली—इस प्रणाली में पहले अध्यापक छात्रों से ही श्लोक का शुद्ध पाठ करने के लिए कहता तथा उन्हीं से उसका अर्थ भी पूछता है। किन्तु यदि वे उसके पढ़ने अथवा अर्थ करने में सक्षम नहीं होते तो अध्यापक यह कार्य स्वयं करता है। यद्यपि गद्य-पद्य दानों की शिक्षण-विधियों में पर्याप्त अन्तर होता है तथापि इसमें पद्य का पठन-पाठन गद्यवत् ही रहता है। इस प्रकार के अध्ययन से छात्रों को केवल अर्थ ही ज्ञात हो पाता है काव्यगत सौंदर्यानुभूति उन्हें नहीं होती। किन्तु प्राचीन परिपाटी के अध्यापक पाठशालाओं में आज भी इसका अनुसरण पूर्ववत् करते आ रहे हैं। यह प्रणाली अत्यन्त नीरस तथा रुक्ष होती है। अतः अमनोवैज्ञानिक विधि है। उदाहरणार्थ यदि छात्रों को निम्नांकित श्लोक को पढ़ाना है—

उष्ट्राणां विवाहेषु गीतं गायन्ति गर्दभाः।
अन्योन्यं प्रशंसन्ति अहो रूपमहो ध्वनिः ॥

तो एक परम्परागत प्रणाली का अध्यापक इस श्लोक को पहले छात्रों से पढ़वाकर उन्हीं से इसका अर्थ पूछेगा तथा उनके असमर्थ होने पर उसका पठन तथा अर्थ दोनों स्वयं करेगा। अर्थ-बोध के लिए पहले वह कठिन शब्दों के अर्थ बतलाएगा तथा बाद में सम्पूर्ण श्लोक का अर्थ स्पष्ट करेगा। इस विधि में पठन-पाठन का सम्पूर्ण दायित्व मुख्यतः अध्यापक का रहता है। अतः यह विधि अमनोवैज्ञानिक है। इसमें छात्र प्रायः मूक श्रोता बने रहते हैं।

२. **गीत-नाट्य-प्रणाली**—इस प्रणाली का उपयोग बालगीतों के लिए होता है। इनमें गीतात्मकता की प्रधानता होती है। बालकों को पद्योचित स्वर, लय, ताल आदि में अभिव्यक्ति का प्रशिक्षण देना मुख्य उद्देश्य रहता है, अर्थ की महत्ता गौण रहती है। अतः इसका उपयोग भी मुख्यतः सातवीं कक्षा तक करना उचित होता है। इस कार्य के लिए चुनी कविता सरल होनी चाहिए तथा संगीत तत्व की उसमें प्रमुखता होनी चाहिए।

इसका प्रयोग छात्रों के गायन में व्यक्तिगत तथा सामूहिक (समवेत) दोनों रुपों में होना चाहिए। अभिनय-गीतों की गणना भी इन्हीं में होती है किन्तु संस्कृत में ऐसे गीत बहुत कम उपलब्ध होते हैं।

३. **व्याख्या-प्रणाली**—इस प्रणाली में अध्यापक प्रत्येक श्लोक का विस्तृत अर्थ करता है तथा इस अध्यापन में वह कवि की रचना-शैली उसके जीवन-दर्शन, श्रोता के लिए पद्य के सन्देश तथा कविता की पृष्ठभूमि, उसकी रचना को परिस्थियाँ तथा रचना-कौशल आदि की भी व्याख्या करता है। जहाँ परम्परागत प्रणाली में शब्दार्थों पर अधिक बल रहता है वहीं इस विधि में भावार्थ पर बल अधिक रहता है। कुल मिलाकर यह विधि छात्रों के लिए अधिक रुचिकर सिद्ध होती है।

४. **दण्डान्वय-प्रणाली**—यह बात सर्वविदित है कि संस्कृत एक सामासिक भाषा है। अतः इसके पद प्रायः संश्लिष्ट होते हैं जिसमें उपसर्ग तथा प्रत्यय आदि मूल शब्द के साथ जुड़े होते हैं। पद्य के अर्थ-बोध की एक कठिनाई यह भी होती है कि पद्य की पक्तियाँ वाक्य-विधान के सामान्य नियमों से अनुशासित नहीं होतीं। पद्य के वाक्य में यदि कर्ता कहीं है तो कर्म कहीं तथा क्रिया उसी वाक्य में कहीं अन्यत्र होतो है। इससे अर्थ-बोध में कठिनाई होतीहै।

इस विधि में पद्यांश को एक पूर्णवाक्य का रूप दे दिया जाता है जिससे उसका स्वरूप गद्य-सरीखा हो जाय। इससे श्लोकों का भाव समझने में सुगमता हो जाती है।

इस प्रणाली द्वारा बालकों को कर्ता, क्रिया, कर्म आदि को पृथक करने का अभ्यास हो जाता है। प्रधान वाक्य की खोज कर लेने के उपरान्त बालक कार्य के अनुसार क्रिया, विशेष्य के अनुसार विशेषण तथा अव्ययों, प्रत्ययों आदि की यथास्थान स्थापना स्वयं कर लेते हैं। संक्षेप में यही दण्डान्वय-विधि है। इसका प्रयोग विशेषतः छोटी कक्षाओं में अधिक होता है।

५. **खण्डान्वय-प्रणाली**—ऊपर हम दिखा चुके हैं कि दण्डान्वय प्रणाली में अन्वय का सहारा लेकर कैसे अध्यापन किया जाता है। खण्डान्वय प्रणाली

अन्वय पर ही आश्रित एक दूसरी विधि है। इस विधि में भी प्रथम श्लोक के मुख्य वाक्य की खोज की जाती है। प्रधान वाक्य के मिल जाने पर उपयुक्त प्रश्नोत्तरों के माध्यम से शेष अंश का बोध कराया जाता है। इस क्रिया में कर्ता कर्म, क्रिया, विशेषण प्रत्यय तथा अव्यय आदि भी ज्ञात कर लिए जाते हैं। दण्डान्वय तथा खण्डान्वय प्रणाली का मूल भेद यह है कि दण्डान्वय-प्रणाली में कर्ता, क्रिया आदि पर सीधे प्रश्न किए जाते हैं किन्तु खण्डान्वय में प्रश्न विषय पर तथा प्रसंग में किए जाते हैं। ये प्रश्न साहित्य पर होते हैं व्याकरण की दृष्टि से नहीं पूछे जाते।

इस प्रणाली को हम प्रश्नोत्तर-प्रणाली का नाम भी दे सकते हैं क्योंकि इनमें प्रश्नोत्तरों का महत्त्व विशेष होता है। विशेषण-बहुल तथा घटना-प्रधान कविताओं के अध्यापन में इसका प्रयोग विशेष रूप से उपयोगी होता है। यह प्रणाली कविता-शिक्षण की एक श्रेष्ठ विधि है। दण्डान्वय-प्रणाली की तुलना में इसकी श्रेष्ठता निर्विवाद है तथा उसकी अपेक्षा मनोवैज्ञानिक भी अधिक है क्योंकि इसमें छात्रों की रुचि अधिक होती है तथा उनका सहयोग और उनकी सक्रियता अधिक रहती है। दण्डान्वय-प्रणाली का प्रयोग वैयक्तिक-शिक्षण में ही अधिक सहायक होता है परन्तु खण्डान्वय-प्रणाली का प्रयोग व्यक्तिगत शिक्षण तथा कक्षा-शिक्षण दोनों के लिए उपयोगी है। इस प्रणाली से काव्य के अंतरंग भावों तथा काव्यगत् सौंदर्य की प्रतीति और उसका आस्वादन भी सुविधा से कराया जा सकता है।

६. **भाष्य-प्रणाली**—यह प्रणाली व्यास-गद्दी से प्रवचन करनेवाले कथावाचक की-सी शैली की विधि है। इसमें अध्यापक शब्द-प्रति शब्द पर विचार करता है। काव्य की दृष्टि से शब्द शक्तियों, अलंकारों के विधान, तुकान्तता, आरोहा-वरोह, ओज, माधुर्य, प्रसाद आदि गुणों तथा छन्दों के रचना-विधान आदि का भी निरूपण साथ-साथ होता चलता है। इनके अतिरिक्त ऐतिहासिक संदर्भों, अन्तः कथाओं तथा दृष्टान्तों आदि का भी प्रयोग करते हुए कविता के भावों की व्याख्या की जाती है।

भाष्य-प्रणाली का ही दूसरा नाम व्यास-प्रणाली भी है क्योंकि इसमें अध्यापक का अभिनय व्यासगद्दी पर बैठे कथावाचक सदृश होता है। इसलिए एक कुशल व्यास के समान अध्यापक का कण्ठ भी सुरीला होना चाहिए तथा एक अभिनयकर्ता की भाँति भावानुरूप भाव-भंगिमाओं के प्रयोग की पटुता भी अपेक्षित रहती है।

संस्कृत साहित्य इस विधि पर आधारित भाष्यों से भरपूर है। इसमें अध्यापक के लिए व्यापक अध्ययन अपेक्षित रहता है। जैसा कि उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है, इस विधि का उपयोग उच्च कक्षाओं में ही उचित होता है निम्न तथा मध्य स्तर के छात्रों को इससे कोई विशेष लाभ नहीं होता। इसका दोष एक ही है और वह यह कि इसमें मूल कृतित्व अध्यापक का ही रहता है तथा छात्रों की सक्रियता बहुत कम रहती है।

७. तुलना-प्रणाली—जैसा कि इस विधि के नाम से ही स्पष्ट है, इस विधि के अनुसार अध्यापक प्रस्तुत कविता को उससे मिलते जुलते भाव वाली कविता के आश्रय से और उससे तुलना करते हुए पढ़ाता है। इस प्रणाली में निश्चय ही अध्यापक को सामग्री जुटाने में श्रम अधिक करना पड़ता है। इससे छात्रों में पाठ्यवस्तु के प्रति रुचि उद्‌बुद्ध होती है तथा प्रस्तुत कविता के भावों को हृदयंगम करने में पर्याप्त सुविधा होती है। सामान्य अध्यापक के लिए यह कार्य कठिन होता है क्योंकि यह प्रणाली श्रम-साध्य प्रणाली है। इसका सफल प्रयोग वही अध्यापक कर सकता है जो साहित्य का अच्छा ज्ञाता, बहुपाठी तथा भाषा का अच्छा अधिकारी हो। इस विधि का कार्यान्वियन निम्न रीतियों से किया जा सकता है—

१. संस्कृत भाषा के ही अन्यान्य कवियों की ऐसी रचनाओं से तुलना जो समानान्तर भावों पर आधृत हों तथा जिनकी भाषा पाठ्यवस्तु की भाषा से सरल हो और जिसका अधिकांश भाग छात्र स्वयं समझ सकें।

२. पाठ्यवस्तु के भावों के अनुरूप भाव रखने वाली अन्य भाषाओं की कविताएँ जिन भाषाओं का छात्रों को ज्ञान हो। ऐसी कविताओं का प्रयोग भी सादृश्य-निरूपण के लिए किया जा सकता है, जैसे—हिन्दी, अंग्रेजी आदि।

८. समीक्षा-प्रणाली—इस प्रणाली द्वारा छात्रों को काव्य-समीक्षा के सिद्धान्तों का परिचय कराकर उन्हीं के आधार पर प्रस्तुत पाठ की समीक्षा करने का अभ्यास कराया जाता है। इसमें अध्यापक के कुशल निर्देशन की बड़ी महत्ता होती है। उसके बिना सफलता नहीं मिल सकती। इसमें आवश्यकतानुसार समभाव की कविताओं की तुलना भी सम्मिलित रहती है। इस प्रणाली का प्रयोग केवल उच्चस्तर के लिए होता है। उससे नीचे की कक्षाओं में न तो छात्रों को समीक्षा के सिद्धान्तों का ज्ञान रहता है न इस विधि का उपयोग

हो सकता है क्योंकि भाषा और साहित्य में बालकों की योग्यता भी उस स्तर की नहीं होती जहाँ इस विधि का प्रयोग फलप्रद सिद्ध हो सके।

उपर्युक्त सभी प्रणालियों पर सामूहिक रूप से दृष्टि-निक्षेप करने से यह बात बिलकुल स्पष्ट हो जाती है कि सभी विधियाँ सभी कक्षाओं के लिए उपयोगी नहीं हैं। अतः उसी के अनुसार जो विधि जिस कक्षा के लिए उपयोगी सिद्ध हो सके उसका प्रयोग उसी कक्षा में करना चाहिए।

शिक्षण-सोपान—कविता-शिक्षण की पाठ-योजना में निम्न सोपानों का प्रयोग करना चाहिए—

१. सामान्य प्रारम्भिक बातें, यथा—दिनांक, कक्षा, कालावधि, विषय, प्रकरण (शीर्षक) आदि।
२. सामान्य उद्देश्य
३. विशिष्ट उद्देश्य
४. सहायक साग्रमी
५. पूर्व-ज्ञान
६. प्रस्तावना—
७. उद्देश्य-कथन
८. पाठोपस्थापन
९. आदर्श पाठ
१०. अनुकरण पाठ
११. भावबोधात्मक प्रश्न
१२. शब्द-व्याख्या
१३. सौंदर्यानुभूति के प्रश्न
१४. पुनरावृत्ति के प्रश्न
१५, श्यामपट्ट-कार्य
१६. गृह-कार्य

काव्यपाठ-योजना

[प्रथम]

पाठ्यवतु

महर्षेर्वचनाद्रामो यत्र तिष्ठति तद्धनुः।
मञ्जूषां तामपावृत्य दृष्टवा धनुरथाब्रवीत् ॥ (१)
इदं धनुर्वरं दिव्यं संस्पृशामीह पाणिना।
यत्नवांश्च भविष्यामि तोलने पूरणेऽपि वा ॥ (२)

पश्यतां नृसहस्राणां बहूनां रघुनन्दनः ।
अरोपयत् स धर्मात्मा सलीलमिव तद्धनुः ॥ (३)
तद् बभञ्ज धनुर्मध्ये नरश्रेष्ठो महायशा : ।
निपेतुश्च नरा सर्वे तेन शब्देन मोहिताः ॥ (४)
वर्जयित्वा मुनिवरं राजानं तौ च राघवौ ।
तस्य शब्दो महानासीत् पर्वतस्येव दीर्यतः ॥ (५)

विद्यालय का नाम........................ **दिनांक**...................

अध्यापक का नाम....................... **कक्षा**—नवम

विषय—"संस्कृत पद्य" **अवधि**—४० मिनट

शीर्षक—"बाल्मीकि रामायण"

सामान्य उद्देश्य—

१. संस्कृत कविता के अध्ययन के प्रति छात्रों में अनुराग उत्पन्न करना ।
२. कल्पना शक्ति का विकास, आनन्दपूर्वक कविता के आस्वादन की शिक्षा ।
३. कवि के मनोभावों के अनुरूप आरोहावरोहपूर्वक कविता पाठ की क्षमता उत्पन्न करना ।
४. कविता के पठन द्वारा छात्रों के भावों के परिष्कार एवं उदात्त भावों के ग्रहण की क्षमता ।
५. कविता के केन्द्रीय भावों के बोध की क्षमता उत्पन्न करना ।
६. काव्यगत सौन्दर्य की अनुभूति की क्षमता उत्पन्न करना ।
७. कविता की विभिन्न शैलियों से परिचय ।
८. बालकों को वाच्चार्य, लक्ष्यार्थ तथा व्यङ्ग्यार्थ बोध की शिक्षा देना ।
९. काव्यगत सन्देश से परिचय प्राप्त करना ।
१०. क्षमतानुसार छात्रों को संस्कृत काव्य रचना की प्रेरणा देना तथा उसमें उनकी सहायता करना ।

विशिष्ट उद्देश्य— वाल्मीकि रामायण में वर्णित श्री राम के द्वारा धनुर्भङ्ग किये जाने के प्रसङ्ग के माध्यम से वाल्मीकि रामायण के काव्यसौष्ठव से परिचय कराना तथा छात्रों के हृदय में उदात्त विचार दृढ़ करना ।

सहायक सामग्री— कक्षा-शिक्षण के सामान्य साधन तथा सीता-स्वयंवर का दृश्यांकन करनेवाला चित्र।

पूर्व-ज्ञान— छात्र रामकथा के महत्त्व से परिचित हैं।

प्रस्तावना—
१. वाल्मीकिना किं काव्यं लिखितम् ?
२. दशरथस्य राजधानी का नगरी आसीत् ?
३. दशरथस्य पुत्राणां कानि नामानि ?
४. कः ऋषिः रामलक्ष्मणौ यज्ञरक्षणार्थमनयत् ?
५. ऋषिः रामलक्ष्मणौ मिथिलां कस्मिन् प्रसगे अनयत् ?

उद्देश्य-कथन— आज हमलोग महर्षि वाल्मीकि द्वारा विरचित रामायण के धनुर्भङ्ग प्रसङ्ग का अध्ययन करेंगे।

पाठोपस्थान— प्रस्तुत पाठ को एक ही अन्विति में पढ़ाया जाएगा।

आदर्श पाठ— शिक्षक सभी श्लोकों का आदर्श पाठ करेगा।

अनुकरण पाठ— कतिपय छात्रों द्वारा प्रत्येक श्लोकों का सस्वर वाचन किया जाएगा।

भाव-बोध-परीक्षा—
१. रामः धनुः कुत्रस्थितम् अपश्यत् ?
२. रामः दिव्यं धनुः कथम् अस्पृशत् ?
३. कति लोकाः रामेण आरोपितं धनुः अपश्यन् ?

शब्द-व्याख्या—

शब्द	अर्थ	विधि
अपावृत्य	खोलकर (अप + आ + वृ)	व्याख्या
धनुर्वरम्	धनुष में श्रेष्ठ (धनुः षुः वरम्)	समास विधि
आरोपयत्	चढ़ाया	व्याख्या
सलीलम्	लीलया सह वर्तत इति यथा स्थान तथा क्रियाविशेष में	समास विधि
यत्नवांश्च	यत्न करता हुआ	सन्धि-विच्छेद द्वारा (यत्नवान् + च)

सौन्दर्यानुभूति के प्रश्न--

१. रामस्य धनुरुत्तोलने किं वैशिष्ट्यमासीत् ?

२. धनुर्भङ्गदृश्यावलोकनेन अन्येषु उपथितराजसु कीदृशः प्रभावः सञ्जातः ?

पुनरावृत्ति-- १. छिन्नस्य धनुषः कथमिव शब्द आसीत् ?

२. रामः हस्तेन किमस्पृशत् ?

२. महर्षिः विश्वामित्रः रामं किमादिशत् ?

श्यामपट्ट-कार्य-- कठिन शब्दों की व्याख्या श्यामपट्ट पर की जायगी।

गृह-कार्य— समस्त श्लोक का अर्थ लिखकर घर से लाने को कहा जायगा।

काव्यपाठ-योजना

[द्वितीय]

कुसुमस्तवकस्येव द्वे वृत्ती तु मनस्विनाम्।
सर्वेषां मूर्ध्नि वा तिष्ठेत् विशीर्येत वनेऽथ वा॥
छिन्नोऽपि रोहति तरुः क्षीणोऽप्युपचीयते पुनश्चन्द्रः।
इति विमृशन्तः सन्तः सन्तप्यन्ते न दुःखिता लोके॥
यदेवोपनतं दुःखात् सुखं तद्रसवत्तरम्।
निर्वाणाय तरुच्छाया तप्तस्य हि विशेषतः॥

विद्यालय का नाम........................ **दिनांक**....................

अध्यापक का नाम........................ **कक्षा**--नवम

विषय—संस्कृत पद्य **अवधि**—४० मिनट

शीर्षक—सुभाषित श्लोक

सामान्य उद्देश्य—१. संस्कृत कविता के अध्ययन के प्रति छात्रों में अनुराग उत्पन्नकरना।

२. कवि के अनुरूप आरोहावरोहपूर्वक कविता पाठ की क्षमता उत्पन्न करना।

३. कविता के केन्द्रीय भावों के बोध की क्षमता उत्पन्न करना।

४. कल्पना शक्ति का विकास, आनन्दपूर्वक कविता के आस्वादन की शिक्षा।

५. कविता के पठन द्वारा छात्रों के भावों का परिष्कार एवं उदात्त भावों के ग्रहण की क्षमता।

६. काव्यगत सन्देश से परिचय प्राप्त करना।

७. काव्यगत सौन्दर्य की अनुभूति की क्षमता उत्पन्न करना।

८. क्षमतानुसार छात्रों की संस्कृत काव्य रचना की प्रेरणा देना तथा उसमें उनकी सहायता करना।

विशिष्ट उद्देश्य— जीवन के सुख एवं दुःख की अपरिहार्यता का बोध कराते हुए किसी भी स्थिति में विचलित न होने की प्रेरणा देना। "जीवन में सम्मान का ही महत्व है। महान् व्यक्ति वही है जो दुःख में भी सन्ताप नहीं करता। कष्ट उठाने के बाद ही प्राप्त सुख अधिक स्पृहणीय होता है।" जीवन के इन शाश्वत मूल्यों के प्रति छात्रों में निष्ठा उत्पन्न करना।

सहायक सामग्री— कक्षा-शिक्षण के सामान्य साधन।

पूर्व-ज्ञान— छात्र सुख दुःखादि सहज मानवीय वृत्तियों से परिचित हैं।

प्रस्तावना—
१. कुसुमानि कुत्र तिष्ठन्ति ?
२. क्षीणः चन्द्र कस्मिन् पक्षे वर्धते ?
३. सन्तः दुःखिता अपि किं न कुर्वन्ति ?

उद्देश्य-कथन— आज हमलोग महान् व्यक्तियों के चरित्र की कुछ विशेषताओं का अध्ययन करेंगें।

पाठोपस्थापन— प्रस्तुत पाठ एक ही अन्विति में पढ़ाया जायेगा।

आदर्श पाठ— शिक्षक सभी श्लोकों का आदर्श पाठ प्रस्तुत करेगा।

अनुकरण पाठ— कतिपय छात्रों द्वारा प्रत्येक श्लोक का सस्वर वाचन किया जायगा।

भाव-बोध-परीक्षा—
१. मनस्विनां के द्वे वृत्ती भवतः ?
२. तापतप्ताः किमिच्छन्ति ?
३. तरुच्छायां कः न इच्छति ?

शब्द-व्याख्या—	शब्द	अर्थ	विधि
	विशीर्यंत	नष्ट होगा	प्रकृति प्रत्यय विभाग द्वारा
	छिन्नः	काटा हुआ	प्रकृति प्रत्यय विभाग द्वारा
	रसवत्तरम्	अधिक रसपूर्ण	तरप्, तमप् आदि तुलनात्मक प्रयोग के द्वारा
	तरुच्छाया	वृक्ष की छाया	,, ,,

सौन्दर्यानुभूतिके प्रश्न—
१. कविना कुसुमस्य तुलना केन कृता ?
२. शशिना वृक्षेण वा सज्जनपुरुषाः कां शिक्षां गृह्णीयुः ?

पुनरावृत्ति—
१. छिन्नोऽपि पुनः कः रोहति ?
२. सन्तः दुःखिता अपि कथं न सन्तप्यन्ते ?

श्यामपट्ट-कार्य— कठिन शब्दों की व्याख्या श्यामपट्ट पर की जायगी।

गृह-कार्य— श्लोकों का अर्थ लिखकर घर से लायें।

अभ्यासार्थ प्रश्न

१. कविता की विभिन्न परिभाषाओं के आधार पर उसके स्वरूप का विवेचन कीजिए।
२. गद्य और कविता के प्रकृति-भेद का निरूपण करते हुए जीवन में काव्य के महत्त्व पर प्रकाश डालिए।
३. संस्कृत कविता के अध्यापन के उद्देश्यों का उल्लेख कीजिए।
४. कविता की शिक्षण-विधियों कौन-कौन सी हैं ?—स्पष्ट कीजिए।
५. कविता-शिक्षण की निम्नांकित प्रणालियों में से किन्हीं तीन पर विस्तार से विचार कीजिए—
   (क) परम्परागत प्रणाली
   (ख) खण्डान्वय-प्रणाली
   (ग) भाष्य-प्रणाली
   (घ) गीत तथा नाट्य-प्रणाली
   (ङ) तुलना-प्रणाली

१५

लेखन-शिक्षण

भाषा के दो रूप होते हैं—१. मौखिक, २. लिखित।

भाषा के अध्येता के लिए इन दोनों के ज्ञान की महत्ता समान रूप से होती है क्योंकि इन दोनों के समन्वित ज्ञान से ही मानव का भाषा-ज्ञान सम्पूर्ण होता है। मौखिक रूप भाषा का ध्वन्यात्मक अथवा उच्चरित रूप होता है। लिखित रूप उसका चाक्षुष रूप होता है जिसमें प्रत्येक वर्ण का आकार-प्रकार सहित सम्पूर्ण रूप दृश्यमान होता है। दूसरे शब्दों में मौखिक भाषा लिखित रूप में ही आकार ग्रहण करती है, साकार होती है।

लेखन-शिक्षण के संबंध में शिक्षाविदों में मतैक्य नहीं रहा है। अतः विभिन्न शिक्षाविदों ने उसके पक्ष-विपक्ष में अपने तर्क दिए हैं। प्रसिद्ध शिक्षा-दार्शनिक फ्रोबेल के अनुसार बालक को पहले पठन की शिक्षा दी जानी चाहिए तथा लेखन की शिक्षा तब दी जानी चाहिए जब कि वह अक्षरों को पहचान कर पढ़ने का अभ्यासी हो जाय। ठीक इसके विपरीत मैरिया मान्तसरी का कथन है कि पहले बालक को लेखन की शिक्षा देनी चाहिए। इससे शारीरिक क्रियाओं पर बालक का नियंत्रण स्थापित हो जायगा। उसके उपरान्त वह लिखित तथा पूर्व-परिचित आकारों (अक्षरों) में प्रस्तुत सामग्री के पठन में स्वयं सरलता-पूर्वक रुचि लेने लगेगा।

इन दोनों से भिन्न डा० सरयू प्रसाद चौबे का मत है। उनकी दृष्टि में लेखन तथा पठन दोनों की शिक्षा साथ-साथ देनी चाहिए। वही लाभप्रद है क्योंकि दोनों की शिक्षा एक साथ चलने से देखना, सुनना तथा करना ये सभी क्रियाएँ एक साथ होंगी। अतः ये दोनों ही परस्पर पूरक का कार्य करेंगी अर्थात् लखन और पठन दोनों का ज्ञान साथ-साथ तथा परस्पर पूरक क्रियाओं के रूप में होगा। यदि सूक्ष्मता से विचार किया जाय तो देवनागरी लिपि के संदर्भ में डा० चौबे का मत ही सर्वाधिक सभीचीन प्रतीत होता है। वस्तुतः देवनागरी संसार की सबसे अधिक वैज्ञानिक लिपि है। जिसमें प्रत्येक ध्वनि के लिए एक स्वतन्त्र ध्वनि-प्रतीक (अक्षर) का विधान है। अतः नागरी लिपि में जो कुछ लिखा जाता है वही पढ़ा भी जाता है। रोमन तथा अन्य लिपियों के समान उसमें यह कठिनाई नहीं है कि लिखा कुछ जाय तथा पढ़ा कुछ और जाय, एक ही अक्षर की कई ध्वनियाँ हों अथवा एक-एक ध्वनि के लिए एकाधिक अक्षरों की सहायता लेनी पड़े। फ्रोबेल तथा मांतसरी के समक्ष अपने मत-निर्धारण के समय कदाचित् नागरी को छोड़ अन्य लिपियाँ ही दृष्टि में रही होंगी। अतः उनके विचार देवनागरी लिपि और संस्कृत भाषा के पठन-पाठन के लिए उपादेय नहीं हैं।

सौंदर्यपूर्ण लेखन का महत्त्व—लेखन एक कला का रूप है। अन्य कलाओं की भाँति इसमें प्रवीण होने के लिए भो पर्याप्त श्रम और अध्यवसाय की आवश्यकता रहती है। सुन्दर लिपि का एक अपना निजी आकर्षण होता है जो कि अध्येता को सहजही में अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है। उसका एक मनोवैज्ञानिक प्रभाव भी पड़ता है तथा उससे लेखन में सौंदर्यप्रियता की प्रवृत्ति उत्पन्न होती है। जीवन में सुन्दर और सुपाठ्य लेखन की आवश्यकता पग-पग पर पड़ती है। विशेषतः कार्यालयीय नियुक्तियों में तो सौंदर्यपूर्ण लेखन अभ्यर्थी की एक अपेक्षित विशेषता मानी जाती है। अभी कुछ ही वर्षों पूर्व तक बालक की शिक्षा-दीक्षा में सुन्दर लेखन और स्वच्छता पर प्रश्नपत्रों में कुछ अंक भी निर्धारित रहते थे।

सुन्दर लेखन के उपाय—लिपि-सौंदर्य की इस महत्ता को स्वीकार करते हुए उसके लिए निम्न उपायों से काम लेना चाहिए—

१. **बैठने तथा लेखनी पकड़ने का ढंग**—सौंदर्यपूर्ण लेखन के लिए बच्चे की बैठक तथा कलम पकड़ने के ढंग इन दोनों का महत्त्व होता है। जो बालक ठीक ढंग से बैठकर लेखन-कार्य नहीं करते उनकी लिखावट भी ठीक नहीं होती। यही बात कलम पकड़ने के सम्बन्ध

में भी आप्त हैं। इन दोनों की उपेक्षा से अक्षर एक ढंग के नहीं बनते। कोई अक्षर सीधा होता है तो कोई टेढ़ा या तिरछा हो जाता है। इससे शारीरिक क्षति भी होती है। कमर टेढ़ी हो जाती है। इसके अतिरिक्त अभ्यास-पुस्तिका अथवा तख्ती को बच्चों के नेत्र से एक फुट की दूरी पर होना चाहिए। कमर झुका-कर बैठना अच्छा नहीं होता।

२. **लेखन-सामग्री**—वस्तुतः प्रारम्भिक लेखन के लिए पुरानी परिपाटी के अनुसार तख्ती का प्रयोग सर्वोत्तम होता है जिस पर प्रारम्भ में लेखन का अभ्यास बड़े आकार में तथा सुन्दर अक्षरों में होता था, परन्तु आज उसका प्रयोग नगण्य हो गया है और उसके स्थान पर प्रारम्भ से ही अभ्यास-पुस्तिका, लेखनी तथा स्याही का प्रयोग होता है। अतः ये सभी सामग्रियाँ उत्तम कोटि की होनी चाहिए।

३. **अक्षरों की रचना**—लेखन में अक्षरों की बनावट पर प्रारम्भ से ही ध्यान देना चाहिए। सभी अक्षर सुन्दर, समान आकार के तथा सीधे होने चाहिए। आड़े-तिरछे अक्षरों से लिपि का सौंदर्य नष्ट हो जाता है तथा उनकी स्वाभाविकता समाप्त हो जाती है। संक्षेपतः अक्षर सुडौल, सुस्पष्ट तथा शिरोरेखाओं से युक्त होने चाहिए।

४. **अध्यापक का आदर्श**—इस दिशा में अध्यापक का आदर्श-लेखन बड़े महत्व की वस्तु होती है। समय-समय पर उसे कक्षा के समक्ष श्यामपट्ट पर बड़े आकार के सुन्दर अक्षर तथा वाक्य लिखकर लेखन का आदर्श प्रस्तुत करना चाहिए। इसी प्रकार उसे बालकों के पास जाकर उनके वैयक्तिक लेखन-कार्य में भी अपेक्षित सुधार करते हुए उन्हें सुन्दर लेखन के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। संस्कृत-लेखन में विन्दी तथा हलन्त आदि पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

५. **आकर्षक उदाहरण**—इस कार्य के लिए कक्षा में स्थान-स्थान पर बड़े आकार में तथा सुन्दर ढंग से लिखे वाक्यों अथवा सुभाषितों के नमूने भी टाँगने चाहिए जिन पर बालकों की दृष्टि निरंतर पड़ती रहे।

६. **सुलेख-प्रतियोगिता**—सुलेख प्रतियोगिता इस कार्य में बड़ी सहायक सिद्ध होती है। प्रतियोगिता में एक विशेष आकर्षण और ऊर्जा

होती है। बालक एक दूसरे से आगे बढ़ने की प्रवृत्ति से सम्पूर्ण लेखन-कार्य बड़ी सावधानी और लगन से करते हैं तथा अपनी लेखन-कुशलता में लाभ उठाते हैं।

जिन बातों की चर्चा उपर की गई है उनकी उपेक्षा लेखन असुन्दर हो जाता है तथा उसकी पठनीयता संदिग्ध हो जाती है। इसका दुष्प्रभाव पाठकों पर पड़ना निश्चित रहता है। प्राचीन प्रणाली का परित्याग कर आज प्रारम्भिक अवस्था से ही लेखन का अभ्यास अभ्यास-पुस्तिकाओं पर तथा फाउन्टेन पेन के प्रयोग द्वारा होता है। वस्तुतः नागरी लिपि के प्रारम्भिक लेखनाभ्यास के लिए ये दोनों ही हितकर नहीं हैं।

सुलेख के अभ्यास के लिए निम्न तीन विधियाँ प्रमुख हैं—

१. अनुलेख
२. प्रतिलेख
३. श्रुतलेख

अनुलेख—अनुलेख में 'अनु' शब्द अनुकरण का बोधक है। अनुलेख का अर्थ है अनुकरण-लेखन। सुन्दर लेखन के लिए अनुलेख एक उत्तम साधन का रूप होता है। अनुकरण किसी क्रिया की यथावत् पुनरावृत्ति का नाम है। इसमें अध्यापक सुन्दर अक्षरों में श्यामपट्ट अथवा बालकों की तख्ती पर लिखता है और बालक उसका बारम्बार यथावत् अनुकरण करते हैं इससे बालक को प्रत्येक अक्षर को सुन्दर और सुडौल लिखने का अभ्यास होता है। अतः यह लिपि-सौंदर्य का एक प्रमुख साधन है। इसके लिए अभ्यास-पुस्तिकाओं का भी प्रचार-प्रसार हुआ है क्योंकि तख्ती अथवा श्यामपट्ट-लेखन में आज पर्याप्त शिथिलता आ गई है। इसमें बालकों के लेखन-काल में अध्यापक का वैयक्तिक निरीक्षण तथा निर्देशन बहुत महत्वपूर्ण होता है।

प्रतिलेख—इसके लिए पृथक् से पुस्तिकाओं की आवश्यकता नहीं समझी जाती। अध्यापक किसी भी पुस्तक अथवा पत्र-पत्रिका से इस कार्यहेतु कोई अंश निर्धारित कर देता है तथा छात्र सुन्दर, सुडौल और समाकार अक्षरों में उसकी प्रतिलिपि प्रस्तुत करते हैं। संस्कृत भाषा की प्रतिलिपि में चन्द्रविन्दु, हलन्त आदि पर भी विशेष ध्यान रखना चाहिए। इस बात पर भी दृष्टि रखनी चाहिए कि एक शब्द से दूसरे के बीच की दूरी सर्वत्र एक-सी हो, यथा स्थान शिरोरेखा का प्रयोग हुआ हो तथा बाएँ ओर उचित स्थान छोड़ते हुए लेखन किया जाय। इसी प्रकार विरामादि चिन्हों पर भी निरन्तर ध्यान रखना चाहिए।

श्रुतलेख—श्रुतलेख अनुलेख तथा प्रलिलेख से एक भिन्न किन्तु अधिक उत्कृष्ट क्रिया है। उसका महत्व भी इन दोनों से अधिक है। यद्यपि मानव जीवन में सुन्दर अभिलेखों की एक अपनी निर्विवाद महत्ता होती है तथापि उसमें गतिशीलता की आवश्यकता भी होती है। थोड़े समय में अधिक परिमाण में सुन्दर लेखन की क्षमता नितान्त आवश्यक वस्तु है क्योंकि समय का अपना मूल्य होता है। श्रुतलेख इसका एक बहुत अच्छा साधन होता है। इससे छात्रों को थोड़े समय में अनुस्वार विसर्ग, हलन्त तथा विरामादि चिन्हों को यथास्थान लगाते हुए शुद्ध तथा अधिक मात्रा में लिखन का अभ्यास होता है जो कि इस क्रिया की प्रमुख देन है। इसके अतिरिक्त इससे बालकों की स्मरणशक्ति और बहुज्ञता का विकास होता है। लेखन के पूर्व इसमें अनेक बातों पर ध्यान देना पड़ता है,—छात्रों के बैठने का ढंग, कलम पकड़ने का ढंग तथा अध्यापक की बोलने की अपनी गति।

इस कार्य में अध्यापक को सर्वप्रथम सम्पूर्ण अंश को शुद्धोच्चारणपूर्वक पढ़कर सुना देना चाहिए। इस कार्य में विभिन्न वाक्यों को सार्थक अंशों में विभक्त कर बोलना चाहिए। इस प्रकार प्रथम वाचन की समाप्ति पर उसका द्वितीय वाचन लेखनार्थ करना चाहिए। इस वाचन को सुनते हुए बालक उसे लिखने का कार्य भी करते चलें। वस्तुतः प्रथम वाचन का उद्देश्य बालकों को विषय-वस्तु से परिचित कराना होता है। लेखन की समाप्ति पर अध्यापक को पुनः एक वाचन करना चाहिए। यह वाचन छात्रों को अपनी भूलों अथवा छूटे हुए अंशों को स्वयं सुधारने का अवसर देने के लिए होता है। अन्त में छात्रों की अभ्यास-पुस्तिकाएँ एकत्र कर अध्यापक को उनका संशोधन करना चाहिए। यदि यह संशोधन बालकों को उनको त्रुटियाँ बतलाते हुए उनके समक्ष किया जाय तो वह अधिक लाभप्रद होता है।

श्रुतलेख का शिक्षण-क्रम

१. सामान्य प्रारम्भिक बातें
२. सामान्य उद्देश्य
३. सहायक सामग्री
४. पूर्वज्ञान
५. प्रस्तावना—(लेख्य अनुच्छेद के विषयवस्तु पर आधारित)।
६. उद्देश्य-कथन
७. पाठोवस्थापन—(१) अध्यापक द्वारा छात्रों के परिचयार्थ अनुच्छेद का प्रथम वाचन।

२. द्वितीय वाचन (लेखन हेतु) ।

३. छात्रों द्वारा तुलना हेतु अनुच्छेद का अन्तिम वाचन ।

८. संशोधन—अध्यापक द्वारा अथवा उसके निर्देशन में (कापियाँ बदलवा कर) छात्रों द्वारा ।

९. श्यामपट्ट-कार्य—जिन भूलों का संशोधन छात्रों के लिए कठिन होगा अथवा जिन शब्दों की छात्र सामूहिक भूलें करेंगे अध्यापक ऐसे शब्दों के शुद्ध रूपों का उल्लेख श्यामपट्ट पर करेगा ।

गृहकार्य—घर से भूलों को सुधार कर शुद्ध शब्दों के अनेक बार लेखनाभ्यास का कार्य ।

पाठ-योजना

पाठ्यवस्तु

व्यायाम

'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्' इति सूक्त्या शरीरस्य महत्त्वं मुक्तकण्ठेनाङ्गीकृतं कविकुलगुरुणा कालिदासेन । धर्मार्थकाममोक्षरूपस्य पुरुषार्थचतुष्टयस्य सिद्धेर्निमित्तं शरीरं खलु । स्वस्थं शरीरं हि अध्यवसायं कर्तुं प्रभवति । अस्वस्थं शरीरं तु स्वस्य लालनं पालनञ्च कर्तुमपि न क्षमंखलु । का कथाऽध्यवसायकस्य ? शरीरस्य नीरोगताया अनेकानि साधनानि सन्ति । तेषु व्यायामस्यापिमहत्त्वपूर्णं स्थानस्ति ।

येन कर्मणानुष्ठितेन मनुष्यस्य तनोः, तद्वारा बुद्धेश्च उचितौ संस्कारोच्छ्रायौ भवतः, येन शरीरस्य सन्धिस्थलानि चलन्ति, धमन्यः स्पन्दन्ते, रक्तं परिष्क्रियते, पाकक्रिया व्यवस्थाप्यते, सम्भवतां रोगाणाम् आक्रमणं प्रतिबद्ध्यते चैतत्कर्म व्यायामः । मनुष्याणां शरीरेण समं बुद्धिरतिघनिष्ठः सम्बन्धो वर्तते ।

विद्यालय का नाम........... **दिनांक**...........

विषय—संस्कृत (श्रुतलेख) **समय**...........

प्रकरण—व्यायामः **कक्षा—अष्टम**

सामान्य उद्देश्य—१. शुद्ध भाषा और सुपाठ्य लिपि में गतिपूर्वक लेखन का अभ्यास ।

२. एकाग्रता तथा स्मरणशक्ति का विकास ।

३. शब्द तथा सूक्ति-ज्ञान की वृद्धि ।

४. विरामादि चिह्नों के प्रयोग का ज्ञान ?

सहायक सामग्री—पाठ्यवस्तु पर निर्मित एक चित्र जिसमें एक ओर व्यायाम करते स्वस्थ व्यक्ति का तथा दूसरी ओर एक दुर्बल व्यक्ति का चित्रण हो ।

पूर्व-ज्ञान— छात्र व्यायाम के लाभ से किंचित् परिचित हैं ।

प्रस्तावना— १. चित्र में प्रथम व्यक्ति का स्वास्थ्य कैसा लगता है ?

२. उसका कारण क्या है ?

३. दूसरा व्यक्ति दुर्बल क्यों है ?

४. उसे अपने स्वास्थ्य के लिए क्या करना चाहिए ?

उद्देश्यकथन— आज हमलोग व्यायाम के विषय में ही लेखन-कार्य करेंगे और देखेंगे कि व्यायाम हमारे लिए कितना आवश्यक और उपयोगी होता है ।

पाठोपस्थापना—

प्रथम वाचन— अध्यापक द्वारा निर्दिष्ट अनुच्छेद का छात्रों के विषय-वस्तु के परिचयार्थ प्रथम वाचन जिसे छात्र केवल ध्यानपूर्वक सुनेंगे ।

द्वितीय वाचन— अध्यापक अब अनुच्छेद का पुनः वाचन करेगा । इस बार छात्र उसे सुनते तथा लिखते चलेंगे ।

तृतीय वाचन— द्वितीय वाचन की समाप्ति के कुछ क्षणों बाद अध्यापक छात्रों को तुलना द्वारा अपनी भूलों को स्वयं सुधारने का निर्देश करते हुए अनुच्छेद का अंतिम अर्थात् तृतीय वाचन करेगा जिससे छात्र असावधानी के कारण हुई भूलों का सुधार तथा छूटे हुए अंशों की पूर्ति स्वयं कर सकें ।

संशोधन— अध्यापक द्वारा अथवा उसके निर्देशन में (कापियाँ बदलवाकर) छात्रों द्वारा त्रुटियों का संशोधन होगा ।

श्यामपट्ट-कार्य— सामूहिक भूलोंवाले कठिन शब्दों के शुद्ध रूपों का उल्लेख श्यामपट्ट पर होगा जिससे छात्रों का पथ-प्रदर्शन हो सके ।

गृहकार्य— घर से भूलों को सुधार कर शब्दों के अनेक बार शुद्ध लेखन का निर्देश ।

अभ्यासार्थ प्रश्न

१. लेखन का प्रारम्भ कब होना चाहिए ? विभिन्न शिक्षा-विदों के मतों का उल्लेख करते हुए अपने मत की पुष्टि कीजिए।

२. सौंदर्यपूर्ण लेखन की महत्ता प्रतिपादित कीजिए।

३. लिपि-सौंदर्य के लिए किन-किन उपायों से काम लेना चाहिए ?

४. सुलेख के अभ्यास की कितनी विधियाँ हैं ? उनकी विशेषताएँ क्या हैं ?

५. श्रुतलेख की क्या विशेषताएँ होती हैं—स्पष्ट कीजिए।

६. श्रुतलेख की पाठ-योजना पर प्रकाश डालिए।

१६

रचना की शिक्षा

मानव एक चिन्तनशील सामाजिक प्राणी है। समाज में पग-पग पर उसे विचारों के आदान-प्रदान की आवश्यकता पड़ती है। अपने विचारों से दूसरों को अभिप्रेरित करना तथा दूसरों के विचारों से स्वयं प्रेरणा प्राप्त करना उसके जीवन का मुख्य व्यापार है। यही वह वस्तु भी है जो कि मूक प्राणियों से उसकी भिन्नता का उद्घोष करती है। मानव की भावाभिव्यक्ति के दो सशक्त माध्यम होते हैं—१–मौखिक तथा २–लिखित।

अपने जीवन में सफलता की प्राप्ति के लिए उसे इन दोनों ही भावाभिव्यक्ति के माध्यमों में निष्णात होने की आवश्यकता निर्विवाद रूप से रहती है। उपर्युक्त दोनों ही माध्यम मानव की शक्ति के स्त्रोत होते हैं। किन्तु इन के मूल में रचना की प्रवृत्ति निहित होती है। जब कोई व्यक्ति अपना कोई विचार मौखिक अथवा लिखित किसी भी रूप में व्यक्त करता है तो उसे शब्दों

के माध्यम से एक रचना में संलग्न होना पड़ता है जिसमें शब्द विचारों के वाह्यावरण अथवा परिधान का काम करते हैं। उनके पीछे विचारों की मानव-निर्मित एक सृष्टि होती है।

जीवन में लिखित रचना की अपनी पृथक महत्ता है। ज्ञान का भण्डार इतना विशाल है कि उसे केवल मौखिक परम्परा तथा मात्र स्मरण द्वारा जीवित रखपाना संभव नहीं हो सकता। यदि वह संभव हो सकता है तो मात्र लेखन द्वारा, उसका कोई अन्य विकल्प नहीं है। लिखित भाषा से ही मौखिक भाषा परिमार्जित एवं स्थायी रुप ग्रहण करती है। मानव जीवन-पर्यन्त अर्जित अपने अनुभव और ज्ञान को मात्र लिखित भाषा के द्वारा ही अपनी अगली पीढ़ियों को स्थानान्तरित कर पाता है।

संसार की सम्पूर्ण गति विधि का आकलन लिखित भाषा के माध्यम से ही होता और सुरक्षित रहता है जिससे विभिन्न युगों का इतिहास निर्मित होता आया है।

कहने का तात्पर्य यह है कि रचना के समुचित ज्ञान के बिना मानव जीवन में एक वृहत् शून्यता का निर्माण हो जाता है। अतः उसकी महत्ता के विषय में इससे अधिक कुछ कहने की आवश्यकता नहीं रह जाती। रचना एक ऐसा कौशल है जिसमें प्रत्येक प्रबुद्ध व्यक्ति का कुशल होना आवश्यक है।

रचना-शिक्षण के उद्देश्य--संस्कृत-शिक्षण के विभिन्न स्तरों पर रचना के निम्न उद्देश्य होने चाहिए--

प्रारम्भिक स्तर कक्षा (६, ७, ८)

प्रारम्भिक स्तर पर बालक का भाषा पर साधारण अधिकार ही रहता है। लिखित तथा मौखिक, दोनों प्रकार की रचनाओं के निरन्तर अभ्यास से ही भाषा पर उत्तरोत्तर उसका अधिकार व्यापक होता है। अतः इस स्तर पर रचना-शिक्षण के निम्न उद्देश्य होने चाहिए--

१. छोटे-छोटे सरल वाक्यों का शुद्ध संस्कृत में अनुवाद का अभ्यास।

२. छोटे-छोटे सरल वाक्यों में छोटे-छोटे विचारों की संस्कृत में अभिव्यक्ति-क्षमता का विकास।

३. सामान्य वस्तुओं अथवा चित्रों पर किए प्रश्नों के उत्तर देने की क्षमता का विकास।

४. वाक्यों में रिक्त स्थानों की पूर्ति का अभ्यास।

५. दिए हुए शब्दों से वाक्य-रचना का अभ्यास ।

६. प्रश्नोत्तर-लेखन की क्षमता विकसित करना ।

७. शब्द-परिवर्तन अर्थात् दिए हुए वाक्यों में आगत शब्दों के लिए अन्य समानार्थी शब्दों के प्रयोग की स्तरानुकूल क्षमता ।

मध्यस्तर (९, १०, ११, १२)

१. शुद्ध तथा सरल संस्कृत में वार्तालाप का अभ्यास ।

२. सूक्तियों के प्रयोग की क्षमता का विकास ।

३. संक्षेपीकरण (अर्थात् बड़े अनुच्छेदों के सार-लेखन) का अभ्यास ।

४. किसी निर्दिष्ट विषय पर एक-दो अनुच्छेद में अपने विचार प्रगट कर सकने की क्षमता ।

५. संक्षिप्त संवाद-लेखन का अभ्यास ।

६. पत्र-लेखन का अभ्यास ।

उच्चतर

१. अपने मनोभावों की सुगठित तथा प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करने की क्षमता ।

२. प्रत्ययों, उपसर्गों, विसर्गों तथा संधि, और समास के प्रयोग से शब्द-रचना की क्षमता ।

३. विस्तृत संवाद-लेखन की योग्यता का विकास ।

४. विविध प्रकार के पत्र-लेखन का उच्चस्तरीय अभ्यास ।

५. स्तरानुकूल निबंध-लेखन का अभ्यास ।

६. अपनी प्रतिभा के अनुसार कहानी, नाटक, जीवनी और कविता आदि के लेखन की क्षमता विकसित करना ।

शिक्षण-क्रम

रचना की पाठ-योजना निम्न सोपानों पर आधृत होनी चाहिए—

१. सामान्य प्रारम्भिक बातें

२. सामान्य उद्देश्य

३. विशिष्ट उद्देश्य

४. सहायक सामग्री (चित्रादि)

५. पूर्वज्ञान

६. प्रस्तावना

७. पाठोपस्थापन

(क) अध्यापक को कतिपय शब्दों और सूक्तियों आदि में गर्भित अर्थों के बोध से छात्रों को उनके प्रयोग के लिए आकृष्ट करते हुए उन्हें लेखन-कार्य के लिए अभिप्रेरित करना चाहिए।

(ख) छात्रों द्वारा रचना-कार्य।

८. संशोधन-कार्य

९. गृहकार्य

विशेष—आगे प्रस्तुत पाठ-योजना से इन सोपानों का प्रयोग स्पष्ट हो जायगा।

रचना का संशोधन

रचना अथवा लेखन का उद्देश्य किसी विचार अथवा भाव को लिपिबद्ध करना मात्र नहीं है। लेखन अथवा रचना की सार्थकता तभी है जबकि वह शुद्ध रूप में हो। अशुद्ध लेखन से जहाँ भाषा के स्वरूप में विकृति उत्पन्न होती है वहीं उससे अर्थ का अनर्थ भी हो जाता है। अतः लेखनगत त्रुटियों का संशोधन अथवा परिमार्जन उतना ही महत्वपूर्ण होता है जितना लेखन स्वयं होता है क्योंकि तभी वह सार्थक हो पाता है।

संशोधन कई प्रकार से हो सकता है, यथा—

१. अध्यापक द्वारा मौखिक रूप से

२. अशुद्धियों को दूरकर श्यामपट्ट पर शब्दों आदि के शुद्ध रूपों के उल्लेख द्वारा।

३. प्रत्येक छात्र को अपने पास बुलाकर उसी के समक्ष उसकी रचना अथवा लेख को संशोधित करते हुए—जिससे कि अध्यापक उन भूलों के कारणों पर भी प्रकाश डालता चले।

वस्तुतः यह तीसरी विधि ही सर्वोत्तम होती है। उसके उपरान्त दूसरी की उपयोगिता बहुत सीमित है।

संशोधन-विधि

शिक्षक को छात्रों के प्रत्येक लिखित कार्य का संशोधन विधिवत् करना चाहिए जिससे उन्हें अपनी भूलों का ज्ञान हो जाय तथा वे उसकी पुनरावृत्ति आगामी कार्यों में न करें। छात्रों की लेखनगत त्रुटियों का संशोधन उनके समक्ष

होना चाहिए तथा उनको उन त्रुटियों के कारणों का भी ज्ञान कराते चलना चाहिए। जो त्रुटियाँ छात्रों ने सामूहिक रूप से की हों उनका निराकरण श्याम-पट्ट पर किया जा सकता है किन्तु वहाँ भी उनके स्वरूप तथा कारणों पर प्रकाश डालना आवश्यक है। जो भूल कारण सहित समझी जाती है उसका परिहार हो जाने पर फिर उसकी पुनरावृत्ति की आशंका नहीं रहती। जिन शब्दों के लेखन में छात्र बार-बार भूलें कर रहे हों उनके रूप का बारम्बार अभ्यास भी आवश्यक होता है। अनेक बार के अभ्यास से शब्दों के वास्तविक रूपों का ज्ञान परिपुष्ट और स्थायी हो जाता है।

अनुस्वार, हलन्त तथा उपसर्ग, विसर्ग आदि के प्रयोग-बाहुल्य के कारण-हिन्दी की अपेक्षा संस्कृत-लेखन में त्रुटियाँ अधिक होती हैं। अतः संस्कृत-लेखन में हिन्दी से अधिक सावधानी बरतने की आवश्यकता रहती है।

संशोधन की एक प्रणाली यह भी है कि छात्रों से एक दूसरे की अभ्यास पुस्तिकाएँ बदलवाकर उनका संशोधन छात्रों द्वारा ही कराया जाय। इससे श्रम और समय दोनों ही की बचत होती है। इस विधि में अध्यापक को श्याम-पट्ट पर ऐसी त्रुटियों का परिमार्जन स्वयं करना पड़ता है जिनके संबंध में छात्रों से भूल की सम्भावना हो। किन्तु एक तो छात्र और अध्यापक के ज्ञान में आकाश-पाताल का अन्तर होता है, दूसरे छात्रों में एक दूसरे के प्रति राग-द्वेष की भावना भी रहती है। अतः ऐसा संशोधन विश्वसनीय तथा न्यायसंगत नहीं हो पाता।

संशोधन लाल स्याही से होना चाहिए। यह लेखन में प्रयुक्त स्याही से भिन्न तथा अधिक स्पष्ट होती है और तत्काल ध्यान आकृष्ट करती है। संशोधन-कार्य के सम्बन्ध में यह बात सदैव स्मरण रखनी चाहिए कि इसमें छात्रों के प्रति अत्यन्त सहिष्णुता और सहानुभूति से काम लेना चाहिए तथा उन्हें निरन्तर प्रगति के लिए प्रोत्साहित करते रहन चाहिए। लेखन की अशुद्धियाँ अनेक प्रकार की होती हैं। उनके बोध के लिए पृथक्-पृथक् सांकेतिक अक्षरों का प्रयोग करना चाहिए तथा एक प्रकार की त्रुटि के लिए कोई एक अक्षर अथवा संकेत सुनिश्चिक कर लेना चाहिए यथा—

व = वर्तनी
त = तथ्य सम्बन्धी भूल
त० प्र० = तथ्य की संदिग्ध प्रामाणिकता
अना० = अनावश्यक शब्दों की भर्ती
का० = कारक-चिन्ह की भूल

मा० = मात्रा-दोष
लि० = लिंग सम्बन्धी दोष
बच० = बचन सम्बन्धी दोष
वा० = वाच्य का दोष
उप = उपसर्ग-दोष
वि० = विभक्ति-दोष
प्र० = प्रत्यय-दोष
ह ह = सन्धि-दोष
== = समास की अशुद्धि
का = काल-दोष
वि० = विराम चिह्न की भूल

रचना शिक्षण की पाठ-योजना

[प्रथम]

विद्यालय का नाम........................　　दिनांक....................

अध्यापक का नाम........................　　कक्षा—अष्टम

विषय—संस्कृत-रचना

शीर्षक—"गो"

सामान्य उद्देश्य—शुद्ध तथा सरल संस्कृत में वार्तालाप का अभ्यास कराना।

२. सूक्तियों के प्रयोग की क्षमता का विकास करना।

३. संक्षेपीकरण अर्थात् बड़े अनुच्छेदों के सार-लेखन का अभ्यास।

४. किसी निर्दिष्ट विषय पर एक-दो अनुच्छेद में अपने विचार प्रगट करने की क्षमता उत्पन्न करना।

५. संक्षिप्त संवाद-लेखन का अभ्यास कराना।

६. पत्र-लेखन का अभ्यास कराना।

विशिष्ट उद्देश्य—　छात्रों को "गौ" पर संस्कृत में कुछ वाक्य लिखने की प्रेरणा देना।

सहायक सामग्री—　गौ का एक चित्र।

पूर्व-ज्ञान— छात्र गौ से पूर्ण रूपेण परिचित हैं।

प्रस्तावना— पशुषु का अस्माकं पूज्या ?
गोः सेवया के लाभाः ?
'गावस्त्रैलोक्य मातरः' इत्यस्य कोऽभिप्रायः ?

पाठोपस्थापना— आज हमलोग गौ के विषय में संस्कृत में कुछ वाक्य बोलने और लिखने की चेष्टा करेंगें।

प्र०—का इयम् (चित्र दिखाकर)
उ०—इयं धेनुः।
प्र०—अस्याः कति पादाः ?
उ०—अस्याः चत्वारः पादाः ?
प्र०—धेनोः कति शृङ्गाणि भवन्ति ?
उ०—धेनोः द्वे शृङ्गे भवतः।
प्र०—ननु धेनोः कति स्तनाः भवन्ति ?
उ०—धेनोः चत्वारः स्तनाः भवन्ति।
प्र०—गावः किं खादन्ति ?
उ०—गावः तृणानि खादन्ति।
प्र०—ननु किं ददाति धेनुः जनेभ्यः ?
उ०—धेनुः जनेभ्यः दुग्धं ददाति।
प्र०—गोः दुग्धात् किं किं भवति ?
उ०—गोः दुग्धात् दधि तक्रं नवनीतं घृतं च भवति।
प्र०—तक्रस्य किं कुर्वन्ति जनाः ?
उ०—तक्रं जनाः नित्यं पिबन्ति।
प्र०—ननु घृतं कस्माद् जायते ?
उ०—घृतं खलु नवनीताद् जायते।
प्र०—दुग्धं केषां जनानां कृते पथ्यम् ?
उ०—दुग्धं सर्वेषां जननां कृते पथ्यम्।
प्र०—ननु दुग्धस्य के के लाभाः सन्ति ?
उ०—दुग्धपानेन बलं वीर्यं कान्तिश्च वर्धन्ते।
प्र०—तर्हि गोपालनम् अस्माकं कर्त्तव्यम् ?
उ०—गोः अस्माकं परमं धनम्।

संशोधनकार्य— अध्यापक कतिपय छात्रों के द्वारा निबन्धपाठ कराकर स्वयं उनका संशोधन करता जायगा।

गृह-कार्य— 'गो' पर एक निबन्ध लिखकर लाने को कहा जायगा।

श्यामपट्टकार्य— शृङ्गाणि—सींग

तक्रम्—मट्ठा

नवनीतम्—मक्खन

रचना-शिक्षण की पाठ-योजना

[द्वितीय]

विद्यालय का नाम.......................... दिनांक...................

अध्यापक का नाम......................... कक्षा—नवम

विषय—संस्कृत-रचना शीर्षक—"राष्ट्र ध्वजम्"

सामान्य उद्देश्य—१. शुद्ध तथा सरल संस्कृत में वार्तालाप का अभ्यास करना।

२. सूक्तियों के प्रयोग की क्षमता का विकास करना।

३. संक्षेपीकरण, अर्थात् बड़े अनुच्छेदों के सार-लेखन का अभ्यास।

४. किसी निर्दिष्ट विषय पर एक दो अनुच्छेद में अपने विचार प्रकट करने की क्षमता उत्पन्न करना।

५. संक्षिप्त संवाद-लेखन का अभ्यास कराना।

६. पत्र-लेखन का अभ्यास कराना।

विशिष्ट उद्देश्य छात्रों को राष्ट्रध्वज का परिचय एवं संस्कृत में कुछ वाक्य बोलने लिखने की प्रेरणा देना।

सहायक सामग्री— तिरङ्गे झण्डे का चित्र।

पूर्व-ज्ञान— छात्र राष्ट्रध्वज से परिचित हैं।

प्रस्तावना— चित्रेऽस्मिन् किं दृश्यते ?

सर्वप्रथमं कस्मिन् वर्षे राजकीयभवनेषु ध्वजारोपणम् अभूत् ?

मध्यवर्तिचिह्नस्य कोऽभिप्रायः ?

पाठोपस्थापना— हमलोग आज राष्ट्रध्वज के सम्बन्ध में संस्कृत में कुछ वाक्य बोलने और लिखने का अभ्यास करेगें।

प्र०—अस्माकं राष्ट्रध्वजे कति वर्णाः सन्ति ?

उ०—ध्वजे अस्माकं त्रयो वर्णाः सन्ति।

प्र०—के त्रयो वर्णाः सन्ति अत्र ?

उ०—अत्र शुक्लः पीतः हरितश्च त्रयो वर्णाः सन्ति।

प्र०—ननु एभिः वर्णैः किमभिज्ञायते ?

उ०—पीतेन देशस्य शौर्यम्, शुक्लेन औदार्यम् हरितेन च समृद्धिः अभिज्ञायते।

प्र०—तर्हि देशोऽस्माकं शूरो वीरः समृद्धश्चेति पिण्डितोऽर्थः ?

उ०—नात्र सन्देहः, देशोऽस्माकं शूरो वीरः समृद्धश्च।

प्र०—ननु मध्ये ध्वजचक्रेण किं ज्ञायते ?

उ०—इदम् अशोकचक्रम् इति कथ्यते।

प्र०—उत्सवेषु राजकीयप्रासादेषु धनिकानां भवनेषु विद्यालयानां शिरःसु न्यायमन्दिराणां शिखरेषु च प्रायोऽवलोकितम्। किं कारणमस्य ?

उ०—तथ्यमिदम्। जनाः अस्य पूजां कुर्वन्ति स्थापयन्ति च उच्चस्थानेषु।

प्र०—कदा नु जना राष्ट्रध्वजस्य कुर्वन्ति पूजाम् ?

उ०—उत्सवेषु नागरिका भारतीया ग्रामीणाश्चापि जना राष्ट्रध्वजस्य पूजां कुर्वन्ति।

प्र०—ननु पूजनीयमिदं राष्ट्रचिह्नम् ?

उ०—अत्र कः सन्देहः, अवश्यं पूजनीयम्।

संशोधन कार्य— अध्यापक कतिपय छात्रों द्वारा सम्पूर्ण निबन्धका पाठ करायेगा तथा आवश्यक संशोधन करेगा।

गृह-कार्य— 'राष्ट्रध्वज' पर घर से निबन्ध लिखकर लाने को कहा जायगा।

श्यामपट्ट कार्य— शुक्लः —उजला

पीतः—पीला

हरितः—हरा

अभ्यासार्थ प्रश्न

१. मानव जीवन में रचना की महत्ता पर प्रकाश डालिए ।

२. माध्यमिक तथा उच्च स्तर पर रचना के उद्देश्यों का उल्लेख करते हुए उनका अन्तर स्पष्ट कीजिए ।

३. रचना की पाठ-योजना के विभिन्न सोपानों का उल्लेख करते हुए रचना में संशोधन-कार्य का महत्व स्पष्ट कीजिए ।

४. प्रारम्भिक कक्षा के लिए रचना के किसी पाठ पर एक पाठ-योजना प्रस्तुत कीजिए ।

१७

मूल्यांकन

किसी लक्ष्य की दिशा में बढ़ने वाले व्यक्ति के लिए उसकी प्रगति का आकलन बहुत आवश्क होता है। यही बात शिक्षा पर भी पूरी तरह आप्त है। अध्यापक के श्रम अथवा उसके अध्यापन से छात्रों ने कितना लाभ उठाया अथवा नहीं उठाया है इसका मापन आवश्यक होता है। उसी से अध्यापक की अपनी सफलता-असफलता का ज्ञान होता है तथा उसी से छात्रों के ज्ञान की परख तथा उनकी दुर्बलताओं का भी पता चलता है। अतः इससे शिक्षा की माप अथवा उसके मूल्यांकन की महत्ता स्पष्ट हो जाती है। अध्यापक को किस दिशा में कितना प्रयास करना चाहिए तथा छात्रों को प्रत्येक कक्षा तथा उसके प्रत्येक विषय में अपने निर्धारित लक्ष्य तक पहुँचने के लिए क्या-क्या करना शेष रह गया है इन दोनों का निदर्शन मूल्यांकन से ही होता है। परीक्षा उसीका दूसरा नाम है। एक वाक्य में अध्यापक तथा छात्र दोनों ही के लिए परोक्षण अथवा मूल्यांकन का वही महत्व है जो कि एक जलयान के नाविक के लिए दिशासूचक यंत्र का होता है।

परम्परागत परीक्षा-प्रणाली के दोष

किसी न किसी रूप में शिक्षा-दीक्षा का परीक्षण अतीत युग से ही सभी देशों में प्रचलित रहा है। इसमें सन्देह नहीं कि अब तक की शिक्षा का निर्देशन मुख्यतः इन्हीं के द्वारा होता आया है किन्तु फिर भी इनकी उपयोगिता सीमित रही है। यदि सूक्ष्म दृष्टि से विचार किया जाय तो परम्परागत प्रणाली में अनेक

दोष भी दृष्टिगत होते हैं जिनकी ओर अतीत के शिक्षाविदों का ध्यान नहीं गया था। वे दोष ये हैं—

१. इन परीक्षाओं से विषय-वस्तु के ज्ञान का तो परीक्षण हो जाता है किन्तु शिक्षण-विधि की त्रुटियों पर इनसे बिलकुल दिशाबोध नहीं होता।

२. इन परीक्षाओं में आत्मपरकता अधिक मिलती है तथा उसकी तुलना में वस्तुनिष्ठता का चिंतनीय अभाव मिलता है।

३. ये बालक की स्मरणशक्ति का ही परीक्षण अधिक करती हैं तथा उसकी अन्य मानसिक योग्यताएँ परीक्षा की परिधि के बाहर ही रहती है।

४. ये परीक्षाएँ निबंधात्मक होती हैं। अतः इनसे छात्र की वाचन-क्षमता, मौखिक भावभिव्यक्ति क्षमता तथा श्रवण द्वारा बोध की क्षमता का परीक्षण नहीं होता जो कि संस्कृत भाषा के ज्ञानार्जन के नितान्त आवश्यक अंग होते हैं। इस प्रकार उनके उच्चारण-ज्ञान, शब्द-भण्डार आदि की परख नहीं हो पाती।

५. उपर्युक्त निबंधात्मक परीक्षा-प्रणाली के अनुसार निर्मित प्रश्न-पत्रों में प्रश्न भी कुछ इने-गिने ही होते हैं। सम्पूर्ण पाठ्यक्रम पर आधारित नहीं होते। अतः छात्र महत्वपूर्ण प्रसंगों पर ही ध्यान देते हैं सम्पूर्ण पाठ्यक्रम वे नहीं पढ़ते।

६. इन प्रश्नों का ध्येय भी मुख्यतः सूचनात्मक ज्ञान का परीक्षण होता है—उनके प्रयोग का नहीं अतः इनसे शिक्षा-दीक्षा के सम्पूर्ण प्रयोजन की पूर्ति नहीं होती।

नवीन परीक्षा-प्रणाली

अतः उपर्युक्त निबंधात्मक परीक्षा-प्रणाली के दोषों को दृष्टिगत रखते हुए शिक्षाविदों ने उसमें कतिपय सुधार करते हुए उसे नया रूप देने का प्रयास किया हैं। वे मूलतः शिक्षा के मनोनीत उद्देश्यों की पूर्ति को लक्ष्य मानकर चलती हैं। नवीन प्रणाली के अनुसार रचे गए प्रश्नों के उत्तर सुनिश्चित होते हैं। उनमें आत्मपरकता के लिए स्थान नहीं होता तथा वस्तु-निष्ठता ही उनका आधार होती है। इसी प्रकार उनका मूल्यांकन अथवा अंकदान भी सुनिश्चित रहता है। उनमें आंशिक सत्य को स्वीकार करने का प्रश्न नहीं उठता। उत्तर या तो सत्य होंगे अथवा असत्य ही होंगे। अतः इस प्रणाली में प्रश्न-रचना का भी बड़ा महत्व होता है। उनकी रचना कोई कुशल अध्यापक ही कर सकता

है। इन प्रश्नों की रचना कई शैलियों में होती है। मुख्यतः इन प्रश्नों की शैलियाँ ये हैं—

१. पूर्ति-परीक्षा

२. सत्यासत्य-परीक्षा

३. पुनर्व्यवस्था-परीक्षा

पूर्ति-परीक्षा

इस परीक्षा में वाक्यों में रिक्त स्थानों की पूर्ति करनी होती है। उदाहरण निम्न हैं—

१. दशरथः……………राजा आसीत्।

२. रामः दशरथस्य……………आसीत्।

३. ……………बालीं हतवान्।

४. उत्तरप्रदेशस्य राजधानो……………अस्ति।

अथवा

नीचे लिखे वाक्यों में रिक्त स्थानों की पूर्ति विशेषण शब्दों से करो—

१. जलाशये……………कमलानि विकसितानि।

२. गङ्गाजलं……………भवति।

३. कानपुर नगरं भारतस्य……………अस्ति।

४. गांधी भारतस्य……………आसीत्।

सत्यासत्य-परीक्षा

निम्नांकित कथनों को पढ़ो। इनमें जो सत्य हों उनके सामने √ का चिह्न तथा जो असत्य हों उनके सामने × का चिह्न लगाओ—

१. कालिदासः संस्कृत व्याकरणशास्त्रस्य प्रणेता आसीत्।

२. महर्षि वेदव्यासः श्रीमद्भागवतम् अरचयत्।

३. पंचतंत्रस्य रचयिता विष्णुशर्मा अस्ति।

४. कामायनी जयशंकरप्रसादेन विरचिता।

५. अव्ययः संज्ञायाः विशेषतां सूचयति।

बहुविकल्प-परीक्षा

इसमें अनेक प्रस्तुत उत्तरों में से जो ठीक होता है उसे छाँटकर उस पर √ का निशान लगाना होता है। यह परीक्षा निम्न प्रयोजनों की पूर्ति करती है—

(क) तिथियों का ज्ञान (ख) तथ्य-ज्ञान तथा (ग) तर्क तथा निर्णय-शक्ति का परीक्षण। एक उदाहरण

(क) तिथियों का ज्ञान

१. भारतवर्षः १९३७, १९४५, १९४७, १९५७ वर्षे स्वतन्त्रोऽभूत् ।

२. महात्मा गांधिनः जन्म १८९५, १९२७, १८६९, १९०१ वर्षे अभूत् ।

(ख) तथ्यज्ञान-परीक्षण

१. महात्मगांधिनः जन्मस्थानं तिरुपतिः मेरठः, तिरहुतम्, पोरबंदरः अस्ति ।

२. मदनमोहन मालवीयः एकं प्रसिद्धम् अनाथालयम्, छविगृहम्, जलाशयम्, विश्वविद्यालयम्, स्थापितवान् ।

(ग) निर्णयशक्ति-परीक्षा

उदाहरण—१. गोस्वामी तुलसीदासः रामचरितमानसम् अरचयत् ।

२. रामचरित-मानस-नामकं पुस्तकं तस्य जीविकायाः प्रमुख-साधनमासीत् ।

३. राजाज्ञया स रामचरितमानसं विरचितवान् ।

पुनर्व्यवस्था-परीक्षा

पुनर्व्यवस्था-परीक्षा सम्बन्धी प्रश्न में छात्र के सम्मुख एक सूची दी रहती है । उसे छात्र को सही क्रम में लगाना होता है । नीचे दिए उदाहरणों में एक ओर कुछ लेखकों और कवियों के नाम हैं तथा दूसरी ओर कुछ रचनाओं के नाम दिए हैं । रचनाओं के नाम व्यतिक्रम में हैं । जिसके लेखक / कवि की जो रचना हो उसे उसके नाम के सम्मुख लिखना है ।

उदाहरण

१. भास्कराचार्यः	रसेन्द्रचूणामणिः
२. नेमिचन्दः	रसरत्नाकरः
३. नागार्जुनः	विलोमसारः
४. सोमदेवः	सिद्धान्तशिरोमणिः
५. कालिदासः	पंचतंत्रम्
६. वाणभट्टः	अष्टाध्यायी
७. पाणिनिः	अभिज्ञान शाकुन्तलम्
८. विष्णुशर्मा:	कादम्बरी
९. भरद्वाजः	नाट्यशास्त्रम्
१०. भरतमुनिः	यंत्रसर्वस्वम्

इस प्रणाली पर एक आक्षेप किया जाता है वह यह है कि जहाँ छात्र को किसी प्रश्न का ठीक उत्तर ज्ञात नहीं होता वहाँ वह अनुमान से काम लेता है;

तथा न जानते हुए भी कभी-कभी वह अटकल से ही सही उत्तर पर निशान लगा देता है। इस स्थिति के परिहार के लिए अंकदान-प्रणाली निम्नांकित रीति का अनुसरण किया जाता है—

प्रत्येक शुद्ध उत्तर पर	=	+ १ अंक
प्रत्येक अशुद्ध उत्तर पर	=	— १ अंक
अनिश्चित उत्तर पर	=	० अंक

व्याख्या—

७० शुद्ध	=	+ ७०
३० अशुद्ध	=	— ३०
योग	=	४०

इस प्रकार कुल प्राप्तांक ४० ही होंगे यद्यपि शुद्ध उत्तरों के प्राप्तांकों का योग ७० है तथापि अशुद्ध उत्तरों के प्राप्तांक ऋणात्मक हैं जो कि सम्पूर्ण शुद्ध उत्तरों के प्राप्तांक से घटा दिए जाते हैं। इस प्रकार छात्र को ज्ञात रहता है कि प्रत्येक अशुद्ध उत्तर के लिए उसे दण्ड देना पड़ेगा। अतः वह संदिग्ध प्रश्नों पर चिह्न लगाने का प्रयास ही नहीं करेगा।

ऊपर वस्तुनिष्ठ अथवा परीक्षा की नवीन प्रणाली की चर्चा की गई है तथा उसी के साथ उसके गुणों का उल्लेख भी है। किन्तु इस संदर्भ में यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि परीक्षा की यह नई प्रणाली भी सर्वथा दोषमुक्त नहीं है। जहाँ इससे प्राचीन परम्परागत प्रणाली के अनेक दोषों का परिहार निश्चित रूप से हुआ है वहीं इसके कुछ अपने दोष भी ऐसे हैं जिनके कारण यह स्वयं अत्यधिक अथवा एकांतिक रूप से निर्भर योग्य नही कही जा सकती। इसमें मौखिक परीक्षा के लिए कोई स्थान नहीं है। अतः शुद्धोचरण की क्षमता, मौखिक भाव प्रकाशन-क्षमता तथा श्रवणेंद्रिय द्वारा दूसरों के विचारों को ग्रहण-क्षमता जैसी योग्यताओं का परीक्षण नई परिक्षा-प्रणाली से नहीं होता। इसी प्रकार बालक की लेखन-शैली की शक्ति और उसकी विशेषताओं की जाँच भी इससे नहीं हो पाती जब कि भाषा में उसकी महत्ता प्रमुख है। कुछ ही शब्दों अथवा संकेत-चिह्नों में उत्तरों की माँग करने वाले नई परीक्षा-विधि के प्रश्नों से इस उद्देश्य की पूर्ति असंभव रहती है। अतः प्रश्न यह उठता है कि तब भाषा की दृष्टि से परीक्षाओं का अंतिम उपादेय रूप क्या होगा। वस्तुतः इस पर आज के शिक्षाविदों का गहन चिंतन अपेक्षित है किन्तु एक कार्य-साधक विकल्प के रूप में इस दिशा में जो मार्ग अपनाया जा सकता है वह यह है—

१. प्राचीन तथा नवीन्–दोनों ही परीक्षा–प्रणालियों में से एकांतिक रूप से किसी एक ही पर निर्भर न रहकर दोनों ही का प्रयोग संयुक्त-विधि के रूप में किया जाय जिसमें दोनों ही पद्धतियों के प्रश्न सम्मिलित हों, जिससे दोनों के गुणों से लाभ उठाया जा सके तथा साथ ही दोनों के दोषों से बचा भी जा सके। इससे भाषा के अध्यापनगत मूल उद्देश्यों की अधिक से अधिक रक्षा तथा उनकी पूर्ति हो सकेगी।

२. हमारी दृष्टि में भाषा जैसे विषयों में इनमें दोनों ही शैलियों के प्रश्न समानुपात में अर्थात् ५०% होने चाहिए जो कि भाषा-विषय की दृष्टि से नितान्त आवश्यक है।

३. संस्कृत भाषा में लिखित तथा मौखिक दोनों ही प्रकार की परीक्षाओं का विधान हो तथा दोनों पर सुविचारित मात्रा में अंको का निर्धारण हो।

४. संयुक्त-विधि में लिखित के साथ मौखिक परीक्षण की भी व्यवस्था हो जिसमें शुद्धोचारण से लेकर अनुच्छेद-सारांश तथा संक्षिप्त शास्त्रार्थ अथवा वक्तृता तक की परीक्षा सम्मिलित हो। संस्कृत भाषा की दृष्टि से यही प्रणाली सर्वाधिक उपयोगी सिद्ध हो सकती है। इन्हीं गुणों के अभाव के कारण आज की नवाविष्कृत परीक्षा-प्रणाली भी संस्कृत शिक्षा के उद्देश्यों की पूर्ति में यथेष्ठ मात्रा में लाभप्रद सिद्ध नहीं हुई है।

अतः जब तक शिक्षाविदों द्वारा इसका कोई अन्य विकल्प प्रस्तुत नहीं किया जाता तब तक निःसंदेह इसी विधि से लाभ उठाना उचित होगा।

अभ्यासार्थ प्रश्न

१. मूल्यांकन क्या है ? शिक्षा में उसकी महत्ता स्पष्ट कीजिए।

२. शिक्षाकी परम्परागत प्रणाली के दोषों पर विचार प्रगट कीजिए।

३. नवीन प्रणाली के गुण-दोषों की समीक्षा कीजिए।

४. नवीन प्रणाली की प्रश्न-रचना-शैली की उदाहरण सहित व्याख्या कीजिए।

५. परम्परागत तथा नवीन–दोनों परीक्षा-प्रणालियों के दोषों से बचने के लिए आप क्या करेंगे–स्पष्ट कीजिए।